

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
 उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
 साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
 हर हर शंकर दुखहर सुखहर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
 हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥

जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥

जय रघुनन्दन जय सियाराम। ब्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥

रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,२५,०००)

अभिलाषा

कबहुँक हों यहि रहनि रहौंगो।

श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपातें संत-सुभाव गहौंगो॥

जथालाभसंतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।

पर-हित-निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥

परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।

बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो॥

परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।

तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि-भगति लहौंगो॥

क्या मैं कभी इस रहनीसे रहूँगा? क्या कृपालु श्रीरघुनाथजीकी कृपासे कभी मैं सन्तोंका-सा स्वभाव ग्रहण करूँगा। जो कुछ मिल जायगा उसीमें सन्तुष्ट रहूँगा, किसीसे (मनुष्य या देवतासे) कुछ भी नहीं चाहूँगा। निरन्तर दूसरोंकी भलाई करनेमें ही लगा रहूँगा। मन, वचन और कर्मसे यम-नियमोंका पालन करूँगा। कानोंसे अति कठोर और असह्य वचन सुनकर भी उससे उत्पन्न हुई (क्रोधकी) आगमें न जलूँगा। अभिमान छोड़कर सबमें समबुद्धि रहूँगा और मनको शान्त रखूँगा। दूसरोंकी स्तुति-निन्दा कुछ भी नहीं करूँगा (सदा आपके चिन्तनमें लगे हुए मुझको दूसरोंकी स्तुति-निन्दाके लिये समय ही नहीं मिलेगा)। शरीरसम्बन्धी चिन्ताएँ छोड़कर सुख और दुःखको समान-भावसे सहूँगा। हे नाथ! क्या तुलसीदास इस (उपर्युक्त) मार्गपर रहकर कभी अविचल हरि-भक्तिको प्राप्त करेगा? [विनय-पत्रिका]

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते। * कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखें।

वार्षिक शुल्क *

भारतमें १५० रु०

सजिल्द १७० रु०

विदेशमें—सजिल्द

US\$25 (Rs. 1250)

(Sea Mail)

US\$40 (Rs. 2000)

(Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥

जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क *

भारतमें ७५० रु०

सजिल्द ८५० रु०

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—‘कल्याण-कार्यालय’, पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



KAPWING

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोकमत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च॥

वर्ष

८४

गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०६६, श्रीकृष्ण-सं० ५२३५, जनवरी २०१० ई०

संख्या

१

पूर्ण संख्या १९८

गृहस्थोचित शिष्टाचार

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्। शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः ॥

शुश्रूषन्ते ये पितरं मातरं च गृहाश्रमे॥

भर्तारं चैव या नारी अग्निहोत्रं च ये द्विजाः। तेषु तेषु च प्रीणन्ति देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥

पितरः पितृलोकस्थाः स्वधर्मेण स रज्यते।

यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। तथा गृहाश्रमं प्राप्य सर्वे जीवन्ति चाश्रमाः ॥

[भगवान् महेश्वर पार्वतीजीसे बोले—देवि!] किसी भी जीवकी हिंसा न करना,

सत्य बोलना, सब प्राणियोंपर दया करना, मन और इन्द्रियोंपर काबू रखना तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान देना गृहस्थ-आश्रमका उत्तम धर्म है। जो लोग गृहस्थाश्रममें रहकर माता-पिताकी सेवा करते हैं, जो नारी पतिकी सेवा करती है तथा जो ब्राह्मण नित्य अग्निहोत्र-कर्म करते हैं, उन सबपर इन्द्र आदि देवता, पितृलोकनिवासी पितर प्रसन्न होते हैं एवं वह पुरुष अपने धर्मसे आनन्दित होता है। जैसे सभी जीव माताका सहारा लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ-आश्रमका आश्रय लेकर ही जीवन-यापन करते हैं।

‘जीवनचर्याङ्क’ की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- गृहस्थोचित शिष्टाचार	१६	२५- जीवनचर्याका उपदेश-वचनामृत (अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)	१२३
मङ्गलाचरण—		२६- संकल्पबल और जीवनचर्या (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	१२६
२- मङ्गलाशंसा	१७	२७- चरित्र—भगवत्प्राप्तिका प्रधान साधन (ब्रह्मलीन पुरी-पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज)	१२८
३- जीवनचर्याश्रुतिकल्पलता	१८	२८- भारतीय हिन्दूधर्म सनातन-संस्कृतिमें मानव-जीवनचर्याका महत्त्व	
४- प्रातःस्मरणीय श्लोक	२०	[ब्रह्मलीन योगिराज श्रीदेवराहा बाबाजीके अमृतोपदेश]	
५- सफलताके सोपान [आदर्श जीवनचर्याका स्वरूप] (राधेश्याम खेमका)	२३	[प्रेषक—श्रीरामानन्दजी चौरासिया]	१२९
प्रसाद—		२९- श्रीअरविन्दके योगमें जीवनचर्या [प्रेषक—श्रीदेवदत्तजी]	१३२
६- भगवान् श्रीउमामहेश्वरका जीवन-दर्शन	५५	३०- मानवजीवनका उद्देश्य	
७- पितामह ब्रह्माजीका जीवनचर्या-सम्बन्धी उपदेश	६१	[श्रीमाँ, अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी]	
८- जीवनचर्याके आदर्श प्रतिमान—भगवान् विष्णु	६५	[प्रेषक—सुश्री सुधाकेडिया]	१३३
९- भगवान् श्रीराम और उनकी दिनचर्या [श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी शास्त्री]	६८	३१- जीवनमें संस्कारोंसे लाभ (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१३४
१०- भगवान् श्रीरामकी दैनिक चर्याका स्वरूप [श्रीकमलाप्रसादजी श्रीवास्तव]	७०	३२- फैशनसे बचो (परमहंस स्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती)	१३६
११- श्रीकृष्णकी नित्य प्रातःक्रिया	७२	३३- अच्छ बननेका उपाय (ब्रह्मलीन महात्मा श्रीसीतारामदास उऊंकारनाथजी महाराज)	१४०
१२- भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी दिनचर्या [श्रीलक्ष्मीकान्तजी त्रिवेदी]	७३	३४- सार्ववर्णिक धर्म (गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)	१४२
१३- सप्तर्षियोंकी जीवनोपयोगी सदाचार-शिक्षा	७५	[प्रेषक—श्रीश्यामलालजी पाण्डेय]	१४२
१४- महर्षि अगस्त्य और महादेवी लोपामुद्राकी उदात्त जीवनचर्या	८५	३५- श्रीश्रीमाँ आनन्दमयीकी दृष्टिमें मानवजीवनका उद्देश्य [ब्रह्मचारिणी सुश्री गुणीता]	१४४
१५- महर्षि वेदव्यास और जीवनचर्या-मीमांसा	९३	३६- दिनचर्याका सुधार (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	१४५
१६- राजर्षि मनु और उनका जीवनचर्या-विधायक अनुशासन	९६	३७- जीवनका चरम लक्ष्य (महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगोपीनाथजी कविराज)	१४९
१७- माता मदालसाद्वारा निर्दिष्ट जीवनचर्या	१०१	३८- संयम-सदाचारसे युक्त जीवन ही कल्याणका साधन (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१५०
१८- भगवान् आदि शंकराचार्य और आध्यात्मिक जीवनचर्याका तत्त्व-रहस्य	१०७	३९- जीवनचर्याके दो आवश्यक कृत्य—यज्ञ और तप (ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)	१५४
१९- रामानुज सम्प्रदायमें जीवनचर्याके सिद्धान्त	१११	४०- गीतोक्त सदाचार (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ...	१५६
२०- श्रीवल्लभ-सम्प्रदायमें जीवनचर्याके सूत्र [श्रीशास्त्री जयन्तीलालजी त्रि० जोषी]	११२		
२१- श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें जीवनचर्या [श्रीशास्त्री कोसलेन्द्रदासजी ‘विशिष्टाद्वैतवेदान्ताचार्य’]	११५		
२२- श्रीचैतन्य महाप्रभुद्वारा उपदेशित वैष्णवोंकी जीवनचर्या [डॉ० श्रीगिरिराजकृष्णजी नांगिया]	११७		
२३- समर्थ गुरु स्वामी श्रीरामदासजीकी दृष्टिमें आदर्श दिनचर्या [डॉ० श्रीकेशवधुनाथजी काह्नेरे, एम०ए०, पी०एच०डी०]	११९		
२४- गृहस्थजनों, विरक्तों तथा साधुओंकी जीवनचर्या कैसी हो? [संत श्रीउडियाबाबाजी महाराजके सदुपदेश] [गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी]	१२१		

विषय	पृष्ठ-संख्या
------	--------------

४१- धर्मशास्त्रानुसार जीवनचर्यासे ही कल्याण होता है [ब्रह्मलीन संत स्वामी श्रीचैतन्यप्रकाशनन्दतीर्थजी महाराजके सदुपदेश] [श्रीत्रिलोकचन्द्रजी सेठ]	१६०
४२- सुगमतम साधन (गोलोकवासी पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र) .	१६२
४३- गृहस्थमें साधुतामय जीवनचर्या [ब्रजभाषामें] (गोलोकवासी पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)	१६४

आशीर्वाद—

४४- जीवनचर्यासे आत्मोद्धार (अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)	१६७
४५- जीनेकी रीति [श्रीओमप्रकाशजी बजाज]	१६८
४६- यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः (अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१६९
४७- सदाचारका पालन	१७२
४८- मानवोचित शीलसम्पन्न आदर्श जीवनपद्धति (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१७३
४९- शुभाशंसा (अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ कांचीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराज)	१७७
५०- 'जीवनके हंस मुस्काते हैं' [कविता] (पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक 'अचल' रामायणी)	१७७
५१- श्रीभगवन्निम्बार्काचार्योपदिष्ट जीवनचर्यामें मनोनिग्रह परमावश्यक (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य- पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज)	१७८
५२- ब्रह्मनिष्ठ पूज्य श्रीलक्ष्मेश्वराश्रमजी महाराजका उपदेशामृत [चिन्तामणि]	१८०
५३- दैनिक चर्या-प्रार्थना [कविता] (श्रीरायबिहारीजी टण्डन) [प्रे०—सुश्री सुधा टण्डन]	१८१
५४- भारतीय जीवनचर्याके अमृत-सूत्र (पंचखण्डपीठाधीश्वर आचार्य स्वामी श्रीधर्मन्द्रजी महाराज)	१८२
५५- गृहस्थोंके लिये साधारण नियम	१८६
५६- वर्तमानकालमें आश्रम-व्यवस्थाकी प्रासंगिकता (स्वामी श्रीविवेकानन्दजी सरस्वती)	१८७
५७- ठहरो, थोड़ा सोचो [कविता] (श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल, एम०ए०, बी०एड०)	१८९
५८- आश्रम-चतुष्टयपर एक विहंगम दृष्टि (स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)	१९०
५९- श्रेष्ठजनोंके अनुकरणीय व्यवहारकी उपयोगिता (म०म० गीतामनीषी स्वामी श्रीज्ञानानन्दजी महाराज)	१९३
६०- जीवनमें दैवी-सम्पत्तिका महत्त्व (श्रीनिजानन्दजी सरस्वती)	१९५

विषय	पृष्ठ-संख्या
------	--------------

जीवनचर्या-मीमांसा—

६१- परमार्थ-पथगामिनी जीवनचर्याका वैशिष्ट्य (महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी) ..	१९७
६२- जीवनचर्याका अर्थ एवं उसका उद्देश्य (डॉ० श्रीजितेन्द्रकुमारजी)	१९९
६३- सद्गृहस्थकी जीवनचर्या (शास्त्रार्थपंचानन पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)	२०३
६४- गृहस्थोचित शिष्टाचार (आचार्य श्रीरामदत्तजी शास्त्री)	२०७
६५- जीवनका आनन्द है जीवनचर्या (श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)	२१०
६६- जीवन-कलाके ग्राह्य सूत्र (डॉ० श्रीयमुनाप्रसादजी, अवकाशप्राप्त आचार्य एवं विभागाध्यक्ष)	२१२
६७- जीवनचर्याके करणीय और अकरणीय कर्म (डॉ० श्रीचन्द्रपालजी शर्मा, एम०ए०, पी-एच०डी०)	२१४
६८- संयमित जीवनशैली और स्वास्थ्य (श्रीरामनिवासजी लखोटिया)	२१९
६९- जीवनमें सदाचार, शौचाचार और शिष्टाचारकी महिमा (श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु)	२२२
७०- आजीवनचर्या (श्रीजगदीशप्रसादजी तिवारी)	२२३
७१- जीवनचर्या और मानवता (श्रीगुलाबरायजी, एम०ए०)	२२५
७२- सदाचार और संयमसे लोक-परलोकमें कल्याण (गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी) [प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]	२२८
७३- ब्रह्मचर्य-आश्रमका स्वरूप और उसकी सदाचार-मीमांसा (डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूडामणि)	२३१
७४- हमारे जीवनका लक्ष्य क्या हो ? (श्रीशिवरतनजी मोरोलिया 'शास्त्री')	२३३
७५- जीवननिर्वाहकी श्रेष्ठतम शैली [एक दृष्टान्त] (श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्ता)	२३५
७६- जीवनचर्यामें मर्यादा-पालन—एक आवश्यकता (श्रीनरेन्द्रकुमारजी शर्मा, एम०ए०, बी०एड०)	२३६
७७- उत्तम स्वास्थ्य कैसे पायें ? (डॉ० मधुजी पोद्दार, एम०डी०)	२३७
७८- हमारी जीवनचर्या कैसी हो ? (श्रीजगदीशप्रसादजी तिवारी)	२३९
७९- जीना—एक कला (डॉ० श्रीदेवशर्माजी शास्त्री, एम०ए०, एम०बी०एस०एच०, एम०आई०एम०एस०)	२४०
८०- सुखद जीवन-सन्ध्या (प्रो० डॉ० श्रीजमनालालजी बायती, एम०ए०, एम०कॉम०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)	२४२
८१- टेंशनफ्री (तनावरहित) जीवन (डॉ० श्रीसत्यपालजी गोयल, एम०ए०, पी-एच०डी०, आयुर्वेदरत्न)	२४४
८२- हम सौ वर्ष बिना दवा लिये स्वस्थ जीवन कैसे जियें ? (श्रीमदनलालजी अग्रवाल)	२४६
८३- स्वस्थ जीवन कैसे जीयें ?	२४८
[प्रेषक—डॉ० एस० एन० स्वर्णकार]	२४८

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
८४- लोकवार्ता और जीवनमूल्य (डॉ० श्रीराजेन्द्रजंजी चतुर्वेदी, डी०लिट०)	२५१	१०६- प्रातःजागरण-प्रभुस्मरण [कविता] (स्वामी श्रीनर्मदानन्दजी सरस्वती 'हरिदास')	३०९
८५- भारतीय जीवनचर्या—मूर्तिमती मानवता (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०ए०, पी-एच०डी०)	२५६	१०७- परिवारमें बालकों एवं वृद्धजनोंके प्रति कर्तव्य (वैद्य श्रीराकेशसिंहजी बक्शी)	३१०
८६- संतकी आदर्श क्षमाशीलता	२५९	१०८- गांधीजीकी प्रार्थना और हमारी दिनचर्या (श्रीबालकविजी बैरागी)	३१२
८७- दिव्य जीवनकी जीवनचर्या (श्रीराजेन्द्रजी 'जिज्ञासु') ..	२६०	१०९- अनुपालनीय धर्म (आचार्य श्रीआद्याचरणजी झा)	३१४
८८- जीवनको पतनोन्मुखी बनानेवाले स्थान	२६२	आदर्श जीवनचर्या और दैनिक चर्याके उदात्त चरित—	
८९- सफल जीवनचर्याके दो आवश्यक कृत्य (श्रीदामोदरप्रसादजी पुजारी)	२६४	११०- 'यद्यदाचरित श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः' (श्रीविवेककुमारजी पाठक)	३१५
९०- आदर्श जीवनका मूल मन्त्र—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)	२६५	१११- पूर्वजोंका स्मरणकर उनके पथपर चलें (आचार्य स्वामी श्रीखुशालनाथजी धीर)	३१६
९१- जीवनमें आचारकी सर्वश्रेष्ठता (प्रो० डॉ० श्रीसीतारामजी झा 'श्याम', एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)	२६७	११२- रामराज्यमें नागरिकोंकी आदर्श जीवनचर्या (श्रीरामपदार्थसिंहजी)	३१७
९२- 'मनुर्भव'—मनुष्य बनो (श्रीरामाश्रयप्रसादसिंहजी)	२७०	११३- पवित्रता और जीवनकी सच्चाई [एक दृष्टान्त] (श्रीहरिशंकर बी० जोशीजी)	३१९
९३- पृथ्वीको धारण करनेवाले सात तत्त्व और जीवनचर्यामें उनका महत्त्व	२७२	११४- भक्तिमयी जीवनचर्या	३२०
दैनिक चर्याका स्वरूप और दैनन्दिन कृत्य—		[क] महापुरुषोंके पावन चरित	
९४- जीवनचर्याकी सफलताका प्रथम सोपान—दिनचर्या (डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०, डी०एस-सी०)	२७४	११५- अवधूतश्रेष्ठ भगवान् श्रीदत्तात्रेय एवं उनकी दिनचर्या (स्वामी श्रीदत्तापादाचार्य भिष्णाचार्य, ए०बी०एम०एस०)	३२१
९५- जीवनचर्याके नित्य एवं नैमित्तिक कर्म (श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री, विद्याभूषण)	२७९	११६- पूज्य श्रीउडियाबाबाकी अनूठी जीवनचर्या एवं उपदेश	३२३
९६- ब्राह्ममुहूर्तमें जागरणसे लाभ (डॉ० श्रीविद्यानन्दजी 'ब्रह्मचारी', एम०ए० (द्वय), बी०एड०, पी-एच०डी०, डी०लिट०, विद्यावाचस्पति)	२८२	११७- पूज्य श्रीहरिबाबाजीकी अनूठी जीवनचर्या	३२७
९७- नित्य आवश्यकीय सन्ध्योपासना और उसकी महिमा (पं० श्रीशंकरलालजी तिवारी शास्त्री, एम०ए०, संस्कृत, हिन्दी, बी०एड०, व्याकरण-साहित्यशास्त्री)	२८४	११८- स्वामी श्रीकृष्णबोधश्रमजी महाराजकी जीवनचर्या	३२९
९८- दैनिक चर्या और गायत्री-साधना (दण्डीस्वामी श्रीमद्वत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज) ...	२८६	११९- वाणीका सदाचार	३३१
९९- पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान—नित्यचर्याका अभिन्न अंग (डॉ० श्रीउदयनाथजी झा 'अशोक', साहित्यरत्न, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट)	२८८	१२०- स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजकी प्रेरक दिनचर्या एवं जीवनचर्या	३३२
१००- अभिवादनका स्वरूप-रहस्य और फल (विद्यावाचस्पति डॉ० आर०वी० त्रिवेदी 'ऋषि', वैद्याचार्य, आयुर्वेदशास्त्री)	२९१	१२१- महामना मालवीयजीकी अनुकरणीय दिनचर्या	३३५
१०१- आहार-विज्ञान (डॉ० कु० शैलजाजी वाजपेयी, आहारविशेषज्ञ)	२९५	१२२- महात्मा गांधीकी अनुकरणीय जीवनचर्या—पंचशील और द्वादशव्रत (श्रीमनोहरलालजी गोस्वामी, एम०ए०, एम०एड०, साहित्यरत्न, आयुर्वेदरत्न)	३३९
१०२- दैनिक चर्याको पतनकी ओर ले जानेवाली आसुरी प्रवृत्तियाँ ...	३०३	१२३- 'रामहरि' का जप करनेवाले श्रीविनोबाजीकी चर्या (आचार्य श्रीशरदकुमारजी साधक)	३४०
१०३- सबमें स्थित भगवान्का तिरस्कार न करो	३०५	१२४- आदर्श जीवनचर्या (महाकवि डॉ० श्रीयोगेश्वरप्रसादसिंहजी 'योगेश')	३४१
१०४- मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव (डॉ० श्रीगणेशदत्तजी सारस्वत)	३०६	१२५- म०म० पं० शिवकुमारजी शास्त्रीकी आदर्श दिनचर्या .	३४२
१०५- 'ऊर्जाचक्रानुसार दिनचर्याकी आवश्यकता' (श्रीमती ज्योतिजी दुबे)	३०८	१२६- म०म० पं० गोपीनाथजी कविराजकी प्रेरणाप्रद दिनचर्या	३४३
		१२७- पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराजकी कृष्णप्रेममयी चर्या (श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल)	३४६
		१२८- कलक्टर जॉनमार्शकी आदर्श जीवन-शैली (डॉ० श्रीउदयनाथजी झा 'अशोक', साहित्यरत्न, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)	३४८
		१२९- आदर्श शिक्षककी जीवनचर्या (डॉ० श्रीकन्हैयालालजी शर्मा) ..	३५०

विषय	पृष्ठ-संख्या
------	--------------

१३०- दानशीलता	३५१
१३१- विद्यार्थियोंकी आदर्श जीवनचर्या [कुछ प्रेरक दृष्टान्त] (डॉ० श्रीविश्वामित्रजी)	३५२
१३२- आदर्श राजनेताओंके पवित्र जीवनसे प्रेरणा लें (श्रीशिवकुमारजी गोयल)	३५६
१३३- कुछ न्यायाधीशोंके अनूठे अनुकरणीय प्रसंग (श्रीनरेन्द्रजी गोयल)	३६२
१३४- आदर्श राजाओंके कुछ प्रेरक प्रसंग (श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल)	३६५
१३५- एक उच्चकोटिके साधककी दिनचर्या (डॉ० श्रीदेवदत्तजी आचार्य, एम०डी०)	३६६

[ख] आदर्श जीवनचर्याके विविध प्रेरक प्रसंग

१३६- श्रेष्ठ जीवनचर्यामें माता-पिताकी सेवाके कुछ आदर्श	३६८
१३७- आदर्श आतिथ्य	३६९
१३८- जीवनचर्यामें धर्मनिष्ठाके विशिष्ट प्रसंग	३७१
१३९- संतोंकी जीवनचर्याके पावन प्रसंग	३७२
१४०- जीवनचर्यामें कर्मयोग और कर्म-संन्यासके कुछ प्रतिमान	३७७
१४१- सन्त-स्वभावके आदर्श	३७८
१४२- धर्म-रक्षक	३८०
१४३- दया, अहिंसा, त्याग और क्षमाके आदर्श	३८१
१४४- मनुष्य-शरीर धारणकर क्या किया ?	३८४

जीवनचर्याके विविध रूप—

१४५- संस्कारपरक जीवनचर्यासे मानव-संस्कृतिकी सुरक्षा (डॉ० श्रीराजीवजी प्रचण्डिया, एम०ए० (संस्कृत), बी०एस-सी०, एल-एल०बी०, पी-एच०डी०)	३८५
१४६- नर-जन्म बार-बार नहीं मिलता	३८६
१४७- जीवनचर्यामें संस्कारोंकी आवश्यकता, महत्त्व और उनकी यथाविधि कर्तव्यता (डॉ० आचार्य श्रीरामकिशोरजी मिश्र)	३८७
१४८- आदर्श जीवनचर्याका अभिन्न अंग—स्वाध्याय (डॉ० श्रीशिवओमजी अम्बर)	३९०
१४९- जीवनचर्याका एक प्रमुख अंग—सेवा (डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)	३९१
१५०- दान एवं दानका रहस्य (आचार्य पं० श्रीरामदत्तजी शास्त्री)	३९३
१५१- जीवनचर्यामें पूर्वकर्मका अवदान (श्रीमती निर्मलाजी उपाध्याय)	३९६
१५२- भीख, भिक्षा और दान (प्रो० श्रीइन्द्रवदन बी० रावल)	३९८
१५३- जीवनचर्या, प्रकृति और पर्यावरण (डॉ० श्रीश्यामसनेही- लालजी शर्मा, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०) .	४०१
१५४- 'शिखा' की आवश्यकता (वैदिक सार्वभौम महायाज्ञिक पं० श्रीभगवत् प्रसादजी मिश्र, वेदाचार्य)	४०५
१५५- यज्ञोपवीत-संस्कार और उसकी आवश्यकता (डॉ० श्रीउदयनाथजी झा 'अशोक')	४०६
१५६- आँकनचर्या	४१०

विषय	पृष्ठ-संख्या
------	--------------

१५७- सनातन वैदिक संस्कृतिमें विवाहकी अवधारणा (डॉ० श्रीगणेशदत्तजी शर्मा, एम०ए०, पी-एच०डी०, साहित्याचार्य, पूर्व प्राचार्य)	४११
१५८- भारतीय जीवनमें कुटुम्बकी अवधारणा (श्रीगदाधरजी भट्ट, पूर्व निदेशक राजस्थान संस्कृत अकादमी)	४१३
१५९- दाम्पत्य-जीवनपर पाश्चात्य जीवन-शैलीका दुष्प्रभाव (श्रीओमप्रकाशजी सोनी)	४१५
१६०- दाम्पत्य-जीवन कैसे सफल रहे ? (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)	४१७
१६१- पाश्चात्य संस्कृतिका अनुकरण सर्वथा अनुचित [वैलेण्टाइन-डे मनाना उचित नहीं] (श्रीरमेशचन्द्रजी बादल, एम०ए०, बी०एड०, विशारद)	४१९
१६२- जन्मदिन कब और कैसे मनायें ? (आचार्य पं० श्रीबालकृष्णजी कौशिक, धर्मशास्त्राचार्य, एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी), एम०कॉम०, एम०एड०, ज्योतिर्भूषण, कर्मकाण्डकोविद)	४२१
१६३- वर्ष-वृद्धि संस्कार (वर्धापन-प्रसंग) (श्रीअशोकजी चितलांगिया)	४२३
१६४- जीवनचर्या और सद्वृत्त (साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम०ए०)	४२४
१६५- आदर्श नारी ही गृहस्थाश्रमकी आधारशिला (श्रीमती शोभाजी मिश्रा, एम०एच०एस-सी० (गृहविज्ञान)) ...	४२६
१६६- नित्य स्नान—शास्त्रीय एवं व्यावहारिक दृष्टिमें (पं० श्रीबनवारीलालजी चतुर्वेदी, एम०ए०)	४३१
१६७- चरित्र-शिक्षाकी दिशा	४३२
सत्साहित्य तथा विविध धर्म-सम्प्रदायोंमें	
जीवनचर्याका निदर्शन—	
१६८- वेदोंमें प्रतिपादित पारिवारिक जीवनचर्या (डॉ० श्रीवागीशजी 'दिनकर')	४३३
१६९- वैदिक वाङ्मयमें समाज, राष्ट्र एवं विश्वके प्रति नागरिकोंके कर्तव्य (आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम०ए०, पी-एच०डी०) .	४३५
१७०- श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें निरूपित भगवान् श्रीरामकी जीवनचर्या (डॉ० श्रीमती प्रभासिंहजी, एम०ए०, पी-एच०डी०)	४३८
१७१- आनन्दरामायणमें भगवान् श्रीरामकी आदर्श दिनचर्या (आचार्य श्रीसुदर्शनजी मिश्र, एम०ए०)	४४१
१७२- योगवासिष्ठमें निर्दिष्ट साधककी जीवनचर्या (श्रीरघुराजसिंहजी बुन्देला 'ब्रजभान')	४४४
१७३- पुराणोंमें गृहस्थाश्रमके दिग्दर्शक सूत्र (डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी 'रत्नमालीय')	४४५
१७४- महाभारतमें प्रतिपादित आदर्श जीवनचर्या (डॉ० श्रीविनोदकुमारजी शर्मा, एम०ए० (हिन्दी- संस्कृत) प्रभाकर (संगीत), पी-एच०डी०)	४४९

विषय	पृष्ठ-संख्या
१७५- श्रीमद्भगवद्गीतामें प्रतिपादित जीवनचर्या [प्रेषक—श्रीधनसिंहराव]	४५३
१७६- जीवनचर्याका पावन अधिष्ठान—श्रीरामचरितमानस (डॉ० श्रीराधानन्दजी सिंह, एम०ए०, पी-एच०डी०, एल-एल०बी०, बी०एड०)	४५६
१७७- पर्यावरणको समर्पित बिश्नोई सम्प्रदायकी जीवनचर्या (श्रीविनोदजम्भदासजी कड़वासरा)	४५९
१७८- मराठी संतोंद्वारा जीवनचर्याका उपदेश (डॉ० श्रीभीमार्शकरजी देशपाण्डे)	४६२
१७९- सिखधर्ममें आदर्श जीवनचर्याका रूप (प्रो० श्रीलालमोहरजी उपाध्याय)	४६५
१८०- राजस्थानके भक्ति-साहित्यमें आदर्श जीवनचर्या (डॉ० श्रीओंकारनारायणसिंहजी)	४६७
१८१- वनवासी, आदिवासी तथा यायावर (घुमन्तू) जनसमूहोंकी व्यावहारिक जीवनचर्या (डॉ० श्रीलल्लनजी ठाकुर) ...	४७१
१८२- ईसाई धर्ममें जीवनचर्याका स्वरूप (डॉ० ए० बी० शिवाजी)	४७३
१८३- इस्लाम धर्ममें जीवनचर्या (श्रीसैयद कासिम अली, साहित्यालंकार)	४७५
१८४- वंशसंरक्षणके लिये वर्जित सम्बन्ध (श्रीविमलकुमारजी लाभ, एम०एस-सी०)	४७६

विषय	पृष्ठ-संख्या
१८५- यायावर रोमाओंकी जीवनचर्यामें भारतीय संस्कृतिकी झलक (पद्मश्री डॉ० श्रीश्यामसिंहजी 'शशि', पी-एच०डी०, डी०लिट०)	४७७
१८६- विदेशोंमें बसे भारतीयोंकी जीवनचर्या (श्रीलल्लनप्रसादजी 'व्यास')	४७९
जीवनदर्शन और अध्यात्म—	
१८७- आध्यात्मिक जीवनचर्या (शास्त्रोपासक आचार्य डॉ० श्रीचन्द्रभूषणजी मिश्र)	४८१
१८८- जीवनचर्या-दर्शन (श्रीरमेशभाईजी ओझा)	४८३
१८९- अपने विचारको शुद्ध कीजिये (स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज) ..	४८४
१९०- वाक्-संयम एवं मौन-व्रत (श्रीप्रदीपकुमारजी शर्मा) ..	४८५
१९१- मानवत्व और मानव (श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी)	४८७
१९२- ईर्ष्या और द्वेष—मानवकी विकृत मानसिकताके प्रतीक (कुँवर श्रीभुवनेन्द्रसिंहजी, एम०ए०, बी०एड०, संगीत प्रभाकर)	४९०
१९३- यज्ञीय जीवनचर्या (एकराट पं० श्रीश्यामजीतजी दुबे 'आथर्वण')	४९२
१९४- जीवनमें जरूरी है अध्यात्म (डॉ० श्रीश्यामशर्माजी वाशिष्ठ, एम०ए०, पी-एच०डी०, शास्त्री, काव्यतीर्थ)	४९४
१९५- नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना	४९५

चित्र-सूची

(रंगीन चित्र)

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- 'सर्वभूतहिते रताः'	आवरण-पृष्ठ
२- आदर्श जीवनचर्या—सर्वत्र भगवद्दर्शन	१
३- जीवनचर्याके विविध स्वरूप	२
४- सात्त्विक, राजस और तामस दान	३
५- वैश्य तुलाधारकी स्वधर्मनिष्ठा	४

विषय	पृष्ठ-संख्या
६- सात्त्विक, राजस और तामस आहार	५
७- जीवनकी चार अवस्थाएँ	६
८- भगवान् श्रीकृष्णकी जीवनचर्या	७
९- भगवान् महेश्वरद्वारा देवी पार्वतीको जीवनचर्याका उपदेश	८

(सादे चित्र)

१- पंचमहायज्ञका स्वरूप	३३
२- एक ही थालीमें भोजन करते हुए दो व्यक्ति	३८
३- चारों आश्रमोंका स्वरूप	४६
४- निष्काम भावसे किये जानेवाले काम्य कर्म	४८
५- भगवान् श्रीउमामहेश्वर	५५
६- विषपान करते हुए भगवान् शिव	५८
७- पितामह ब्रह्माजी	६१
८- देवेन्द्रकी जिज्ञासाका समाधान करते भगवान् विष्णु	६५
९- भगवान् श्रीराम	७०
१०- भगवान् श्रीकृष्ण	७३
११- सर्पार्थियोंको गूलरके फल प्रदान करता राजसेवक	७७
१२- महर्षि वसिष्ठ	७८
१३- महर्षि कश्यप एवं राजा पुरुरवा	८०

१४- माता सीताको पातिव्रत्य धर्म समझाते हुए देवी अनसूया	८१
१५- महर्षि गौतम	८२
१६- महर्षि विश्वामित्र	८३
१७- महर्षि भरद्वाजजीका आतिथ्य स्वीकार करते हुए लक्ष्मण एवं सीताजीसहित भगवान् श्रीराम	८५
१८- उलटे लटके हुए पूर्वजोंसे वार्तालाप करते मुनि अगस्त्य	८५
१९- विवाहकी सहमति देती हुई देवी लोपामुद्रा	८६
२०- महर्षि अगस्त्य एवं उनकी जयकार करते हुए देवगण ...	८८
२१- लोपामुद्राको गले लगाती हुई माता महालक्ष्मी	९१
२२- भगवान् श्रीरामद्वारा श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन कराना	९५
२३- मनु-शतरूपाको भगवान् श्रीहरिका शक्तिसमेत दर्शन	९७
२४- बृहस्पति और मनु	१००
२५- राजा ऋतध्वज और मदालसा	१०२

विषय	पृष्ठ-संख्या
२६- माता मदालसाके चरणोंमें नमन करते अलर्क	१०२
२७- भगवान् आदि शंकराचार्य	१०७
२८- श्रीरामानुजाचार्यजी	१११
२९- श्रीवल्लभाचार्यजी	११२
३०- श्रीरामानन्दाचार्यजी	११५
३१- देवर्षि नारदजीको अपनी दुर्दशा बताते हुए भक्तिदेवी	१२९
३२- शृंगारका मोह	१३८
३३- भगवान् निम्बार्काचार्यजी	१७८
३४- इन्द्रको उपदेश देते हुए देवगुरु बृहस्पतिजी	१९७
३५- कुरूप व्यक्तिको उसीके बचपनका चित्र दिखाता हुआ चित्रकार	१९८
३६- अनन्य भजनसे शुद्ध हुए भक्तपर भगवत्कृपा	१९९
३७- रोगी व्यक्तिकी सेवासे भगवत्प्राप्ति	२०१
३८- अतिथिपूजन	२०४
३९- बहूपर स्नेह	२०८
४०- आलसी एवं कर्तव्यहीन व्यक्ति	२१२
४१- मारीच-रावण-संवाद	२१८
४२- सूर्योपासना	२२२
४३- मांसाहारसे नैतिक पतन	२२५
४४- तलाक माँगती हुई स्त्री	२२९
४५- रोगग्रस्त व्यक्ति	२४८
४६- चटोरी नारी	२५२
४७- स्नातकको उपदेश देते हुए आचार्य	२६१
४८- सिनेमामें अश्लील नृत्य देखते दर्शक	२६२
४९- घुड़दौड़में घोड़ोंपर दौंव लगाते व्यक्ति	२६३
५०- जुआ खेलते हुए जुआरी	२६३
५१- पृथ्वीको धारण करनेवाले सात तत्त्व	२७३
५२- शिखामें ग्रन्थिकी आवश्यकता	२७७
५३- सन्ध्या करता हुआ द्विज	२८०
५४- गुरुचरणोंमें प्रणाम	२८९
५५- महाराज दिलीप और सुदक्षिणाकी गोसेवा	२९४
५६- भोजन परोसते हुए नारी	२९७
५७- दूषित पर्यावरणमें भोजन	२९९
५८- मिलावट	३०३
५९- झूठी गवाही	३०४
६०- मद्यपान	३०४
६१- अभक्ष्य-भक्षण	३०४
६२- महर्षि दधीचिद्वारा अपनी हड्डियोंका दान	३०७
६३- अलर्कका दत्तात्रेयजीकी शरणमें जाना	३२१
६४- श्रीउडियाबाबाजी	३२३
६५- स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज	३२९
६६- स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज	३३२
६७- महामना श्रीमदनमोहनजी मालवीय	३३५

विषय	पृष्ठ-संख्या
६८- राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	३३९
६९- म०म० पं० श्रीशिवकुमारजी शास्त्री	३४२
७०- म०म० पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज	३४३
७१- पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज	३४६
७२- भाई एवं पत्नीसहित वनपथपर भगवान् श्रीराम	३६८
७३- मातृ-पितृभक्त श्रवणकुमार	३६८
७४- प्रतिज्ञा लेते हुए गंगापुत्र देवव्रत भीष्म	३६९
७५- महर्षि दुर्वासाका आतिथ्य करते हुए मुद्गल	३७०
७६- श्रीकृष्ण-कर्ण-संवाद	३७१
७७- दुर्योधन एवं शल्य	३७२
७८- स्वामी श्रीरामकृष्णपरमहंस	३७४
७९- स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी सरस्वती	३७५
८०- श्रीरमणमहर्षि	३७६
८१- श्रीगोविन्दाचार्यजी	३७८
८२- क्षमाशील संत	३७९
८३- छत्रपति शिवाजीद्वारा नारीसम्मान	३८०
८४- महाराणा प्रताप	३८०
८५- गुरु तेगबहादुर	३८१
८६- महाराज शिबि	३८२
८७- सम्राट् अशोक	३८२
८८- सम्राट् हर्षवर्धन	३८३
८९- संत ईसामसीह	३८३
९०- भगवान् बुद्ध	३८३
९१- भगवान् महावीर	३८४
९२- संत सरमद	३८४
९३- गुरुकुलमें अध्ययन	३८९
९४- संन्यासी	३९०
९५- राजा धर्मवर्मा के प्रश्नोंका समाधान करते हुए नारदजी	३९४
९६- अपने दूतोंको समझाते हुए यमराजजी	३९७
९७- क्लबका एक दृश्य	४१९
९८- चतुर नारीका घर	४२८
९९- भारतीय संयुक्त परिवारप्रथा	४३३
१००- प्रभु श्रीरामद्वारा मुनिके चरणोंमें प्रणाम करना	४३९
१०१- स्त्रीको प्रताड़ित करना	४४६
१०२- सात्त्विक भोजन	४५२
१०३- तामसी भोजन	४५२
१०४- श्रीरामकी चरणपादुकाकी पूजामें रत भरतजी	४५७
१०५- संत श्रीज्ञानेश्वरजी महाराज	४६२
१०६- संत श्रीएकनाथजी महाराजकी समत्व दृष्टि	४६३
१०७- समर्थ स्वामी रामदासजी	४६४
१०८- संत तुकारामजी महाराज	४६४
१०९- ध्यानमें अवस्थित संत	४८२
११०- श्रीरामजीद्वारा विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा	४९३

मङ्गलाशंसा

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।

शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः॥

ज्योति ही जिसका मुख है, वह अग्नि हमारे लिये कल्याणकारक हो; मित्र, वरुण और अश्विनीकुमार हमारे लिये कल्याणप्रद हों; पुण्यशाली व्यक्तियोंके कर्म हमारे लिये सुख प्रदान करनेवाले हों तथा वायु भी हमें शान्ति प्रदान करनेके लिये बहे।

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।

शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥

द्युलोक और पृथ्वी हमारे लिये सुखकारक हों, अन्तरिक्ष हमारी दृष्टिके लिये कल्याणप्रद हों, ओषधियाँ एवं वृक्ष हमारे लिये कल्याणकारक हों तथा लोकपति इन्द्र भी हमें शान्ति प्रदान करें।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।

शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥

विस्तृत तेजसे युक्त सूर्य हम सबका कल्याण करता हुआ उदित हो। चारों दिशाएँ हमारा कल्याण करनेवाली हों। अटल पर्वत हम सबके लिये कल्याणकारक हों। नदियाँ हमारा हित करनेवाली हों और उनका जल भी हमारे लिये कल्याणप्रद हो।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।

शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्बस्तु वायुः॥

अदिति हमारे लिये कल्याणप्रद हों, मरुद्गण हमारा कल्याण करनेवाले हों। विष्णु और पुष्टिदायक देव हमारा कल्याण करें तथा जल एवं वायु भी हमारे लिये शान्ति प्रदान करनेवाले हों।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।

शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥

रक्षा करनेवाले सविता हमारा कल्याण करें, सुशोभित होती हुई उषादेवी हमें सुख प्रदान करें, वृष्टि करनेवाले पर्जन्यदेव हमारी प्रजाओंके लिये कल्याणकारक हों और क्षेत्रपति शम्भु भी हम सबको शान्ति प्रदान करें।

शं नो देवा विश्वेदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।

सभी देवता हमारा कल्याण करनेवाले हों, बुद्धि प्रदान करनेवाली देवी सरस्वती भी हम सबका कल्याण करें। [ऋग्वेद]

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

देवताओंद्वारा प्रतिष्ठित, जगत्के नेत्रस्वरूप तथा दिव्य तेजोमय जो भगवान् आदित्य पूर्व दिशामें उदित होते हैं; उनकी कृपासे हम सौ वर्षोतक देखें अर्थात् सौ वर्षोतक हमारी नेत्र-ज्योति बनी रहे, सौ वर्षोतक सुखपूर्वक जीवन-यापन करें, सौ वर्षोतक सुनें अर्थात् सौ वर्षोतक श्रवण-शक्तिसे सम्पन्न रहें, सौ वर्षोतक अस्खलित वाणीसे युक्त रहें, सौ वर्षोतक दैन्यभावसे रहित रहें अर्थात् किसीके समक्ष दीनता प्रकट न करें। सौ वर्षोसे ऊपर भी बहुत कालतक हम देखें, जीयें, सुनें, बोलें और अदीन रहें। [शुक्लयजुर्वेद]

जीवनचर्याश्रुतिकल्पलता

जातो	जायते	सुदिनत्वे	अह्नां
समर्थ	आ	विदथे	वर्धमानः ।
पुनन्ति	धीरा	अपसो	मनीषा
विप्र	उदियर्ति		देवया
			वाचम् ॥

जिस व्यक्तिने जन्म लिया है, वह जीवनको सुन्दर बनानेके लिये उत्पन्न हुआ है। वह जीवन-संग्राममें लक्ष्य-साधनके हेतु अध्यवसाय करता है। धीर व्यक्ति अपनी मननशक्तिसे कर्मोंको पवित्र करते हैं और विप्रजन दिव्य भावनासे वाणीका उच्चारण करते हैं। (ऋग्वेद ३।८।५)

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥

उत्तम ज्ञानके अनुसन्धानकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिके सामने सत्य और असत्य दोनों प्रकारके वचन परस्पर स्पर्धा करते हुए उपस्थित होते हैं। उनमेंसे जो सत्य है, वह अधिक सरल है। शान्तिकी कामना करनेवाला व्यक्ति उसे चुन लेता है और असत्यका परित्याग करता है। (ऋग्वेद ७।१०४।१२)

यस्तित्याज	सचिविदं	सखायं	न
तस्य	वाच्यपि	भागो	अस्ति।
यदीं	शृणोत्यलकं	शृणोति	नहि
प्रवेद	सुकृतस्य		पन्थाम् ॥

जो मनुष्य सत्य-ज्ञानके उपदेश देनेवाले मित्रका परित्याग कर देता है, उसके वचनोंको कोई नहीं सुनता। वह जो कुछ सुनता है, मिथ्या ही सुनता है। वह सत्कार्यके मार्गको नहीं जानता। (ऋग्वेद १०।७१।६)

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहता उतापरीषु कृण्ते सखायम् ॥

अन्नकी कामना करनेवाले निर्धन याचकको जो अन्न देता है, वही वास्तवमें भोजन करता है। ऐसे व्यक्तिके पास पर्याप्त अन्न रहता है और समय पड़नेपर बुलानेसे, उसकी सहायताके लिये तत्पर अनेक मित्र उपस्थित हो जाते हैं। (ऋग्वेद १०।११७।३)

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमन् पश्येत पन्थाम् ।

और याचना करनेवालेको दान देकर सुखी करे। (ऋग्वेद
१०।११७।५)

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥

पुत्र पिताके व्रतका पालन करनेवाला हो तथा माताका आज्ञाकारी हो। पत्नी अपने पतिसे शान्तियुक्त मीठी वाणी बोलनेवाली हो। (अथर्ववेद ३।३०।२)

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

भाई-भाई आपसमें द्वेष न करें। बहिन बहिनके साथ ईर्ष्या न रखे। आप सब एकमत और समान व्रतवाले बनकर मृदु वाणीका प्रयोग करें। (अथर्ववेद ३।३०।३)

दृते दृष्टं मा मित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

मेरी दृष्टिको दृढ कीजिये; सभी प्राणी मुझे मित्रकी दृष्टिसे देखें; मैं भी सभी प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखूँ; हम परस्पर एक-दूसरेको मित्रकी दृष्टिसे देखें। (यजुर्वेद ३६।१८)

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद धनम् ॥

अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड़-चेतनस्वरूप जगत् है—यह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है, उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक (इसे) भोगते रहो, (इसमें) आसक्त मत होओ (क्योंकि) धन—भोग्य-पदार्थ किसका है अर्थात् किसीका भी नहीं है। (ईशावास्य० १)

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

शास्त्रनिबन्धन कर्मको (ईश्वरपूजार्थ) करते हुए ही
इस जगत्में सौ वर्षोतक जीनेको इच्छा करनी चाहिये,
इस प्रकार (त्यागभावसे, परमेश्वरके लिये) किये जानेवाले

सत्य ही विजयी होता है, झूठ नहीं; क्योंकि वह देवयान नामक मार्ग सत्यसे परिपूर्ण है, जिससे पूर्णकाम ऋषिलोग (वहाँ) गमन करते हैं, जहाँ वह सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्माका उत्कृष्ट धाम है। (मुण्डकोपनिषद् ३।१।६)

प्रातःस्मरणीय श्लोक

गणेशस्मरण—

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं
सिन्दूरपूरपरिशोभितगण्डयुगम् ।

उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड-
माखण्डलादिसुरनाथकवृन्दवन्द्यम् ॥

अनाथोंके बन्धु, सिन्दूरसे शोभायमान दोनों गण्डस्थल-
वाले, प्रबल विघ्नका नाश करनेमें समर्थ एवं इन्द्रादि देवोंसे
नमस्कृत श्रीगणेशजीका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

विष्णुस्मरण—

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिनाशं
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम् ।

ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥

संसारके भयरूपी महान् दुःखको नष्ट करनेवाले, ग्राहसे गजराजको मुक्त करनेवाले, चक्रधारी एवं नवीन कमलदलके समान नेत्रवाले, पद्मनाभ गरुडवाहन भगवान् श्रीनारायणका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

शिवस्मरण—

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।

खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥

संसारके भयको नष्ट करनेवाले, देवेश, गंगाधर, वृषभवाहन, पार्वतीपति, हाथमें खट्वांग एवं त्रिशूल लिये और संसाररूपी रोगका नाश करनेके लिये अद्वितीय औषध-स्वरूप, अभय एवं वरद मुद्रायुक्त हस्तवाले भगवान् शिवका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

देवीस्मरण—

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां
सद्रत्नवन्मकरकण्डलहारभूषाम् ।

दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां
रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम् ॥

शरत्कालीन चन्द्रमाके समान उज्ज्वल आभावाली, उत्तम रत्नोंसे जटित मकरकुण्डलों तथा हारोंसे सुशोभित, दिव्यायुधोंसे दीप्त सुन्दर नीले हजारों हाथोंवाली, लाल कमलकी आभायुक्त

चरणोंवाली भगवती दुर्गादेवीका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

सूर्यस्मरण—

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि ।

सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम् ॥

सूर्यका वह प्रशस्त रूप जिसका मण्डल ऋग्वेद, कलेवर यजुर्वेद तथा किरणें सामवेद हैं। जो सृष्टि आदिके कारण हैं, ब्रह्मा और शिवके स्वरूप हैं तथा जिनका रूप अचिन्त्य और अलक्ष्य है, प्रातःकाल मैं उनका स्मरण करता हूँ।

त्रिदेवोंके साथ नवग्रहस्मरण—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।

गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(मार्क०स्मृ०)

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये सभी मेरे प्रातःकालको मंगलमय करें।

ऋषिस्मरण—

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च
मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः ।

रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्षः
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥

(वामनपु० १४।३३)

भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन और दक्ष—ये समस्त मुनिगण मेरे प्रातःकालको मंगलमय करें।

सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यासरिपिङ्गलौ च।

सप्त स्वराः सप्त रसातलानि
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥

सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त ।

भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(वामनपु० १४।२४, २७)

सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि और पिंगल—ये ऋषिगण; षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद—ये सप्त स्वर; अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल—ये सात अधोलोक सभी मेरे प्रातःकालको मंगलमय करें। सातों समुद्र, सातों कुलपर्वत, सप्तर्षिगण, सातों वन तथा सातों द्वीप, भूलोक, भुवर्लोक आदि सातों लोक सभी मेरे प्रातःकालको मंगलमय करें।

प्रकृतिस्मरण—

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथापः
स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेजः।
नभः सशब्दं महता सहैव
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(वामनपु० १४।२६)

गन्धयुक्त पृथ्वी, रसयुक्त जल, स्पर्शयुक्त वायु, प्रज्वलित तेज, शब्दसहित आकाश एवं महत्तत्त्व—ये सभी मेरे प्रातःकालको मंगलमय करें।

इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं
पठेत् स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या।
दुःस्वप्ननाशस्त्विह सुप्रभातं
भवेच्च नित्यं भगवत्प्रसादात्॥

(वामनपु० १४।२८)

इस प्रकार उपर्युक्त इन प्रातःस्मरणीय परम पवित्र श्लोकोंका जो मनुष्य भक्तिपूर्वक प्रातःकाल पाठ करता है, स्मरण करता है अथवा सुनता है, भगवद्दयासे उसके दुःस्वप्नका नाश हो जाता है और उसका प्रभात मंगलमय होता है।

पुण्यश्लोकोंका स्मरण

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको जनार्दनः।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः॥
अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

(पद्मपु० ५१।६-७)

राजा नल पुण्यकीर्तिवाले हैं, भगवान् जनार्दन पुण्यकीर्तिवाले हैं, माता सीता पुण्यकीर्तिशालिनी हैं और धर्मराज युधिष्ठिर पुण्यकीर्तिवाले हैं। अश्वत्थामा, बलि, वेदव्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम—ये सात चिरजीवी हैं।

सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।

जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥

(आचारेन्दु)

इन सातों तथा आठवें जो मार्कण्डेयजी हैं, उनका नित्य स्मरण करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसकी अकालमृत्यु नहीं होती और वह सौ वर्षसे भी अधिक जीता है।

उमा उषा च वैदेही रमा गङ्गेति पञ्चकम्।
प्रातरेव पठेन्नित्यं सौभाग्यं वर्धते सदा॥
सोमनाथो वैद्यनाथो धन्वन्तरिरथाश्विनौ।
पञ्चैतान् यः स्मरेन्नित्यं व्याधिस्तस्य न जायते॥

उमा, उषा, सीता, लक्ष्मी तथा गंगा—इन पाँच नामोंका नित्य प्रातःकाल पाठ करना चाहिये, इससे सौभाग्यकी सदा वृद्धि होती है। सोमनाथ, वैद्यनाथ, धन्वन्तरि तथा दोनों अश्विनीकुमारों—इन पाँचोंका जो नित्य स्मरण करता है, उसे कोई रोग नहीं होता।

कपिला कालियोऽनन्तो वासुकिस्तक्षकस्तथा।
पञ्चैतान् स्मरतो नित्यं विषबाधा न जायते॥
हरं हरिं हरिश्चन्द्रं हनूमन्तं हलायुधम्।
पञ्चकं वै स्मरेन्नित्यं घोरसङ्कटनाशनम्॥

कपिला गौ, कालिय, अनन्त, वासुकि तथा तक्षक नाग—इन पाँचोंका नित्य नाम-स्मरण करनेसे विषकी बाधा नहीं होती। भगवान् शिव, भगवान् विष्णु, हरिश्चन्द्र, हनुमान् तथा बलराम—इन पाँचोंका नित्य स्मरण करना चाहिये, यह (स्मरण) घोर संकटका नाश करनेवाला है।

आदित्यश्च उपेन्द्रश्च चक्रपाणिर्महेश्वरः।
दण्डपाणिः प्रतापी स्यात् क्षुत्तृड्बाधा न बाधते॥
वसुर्वरुणसोमौ च सरस्वती च सागरः।
पञ्चैतान् संस्मरेद् यस्तु तृषा तस्य न बाधते॥

आदित्य, उपेन्द्र, चक्रपाणि विष्णु, महेश्वर तथा प्रतापी दण्डपाणिका स्मरण करनेसे भूख और प्यासकी

सफलताके सोपान

[आदर्श जीवनचर्याका स्वरूप]

मनुष्य-जन्म लेकर प्राणीको अत्यन्त सावधान रहनेकी आवश्यकता है, कारण इस भवाटवीमें अनेक जन्मोंतक भटकनेके बाद अन्तमें यह मानवजीवन प्राप्त होता है। यहाँ प्राणी चाहे तो सदा-सर्वदाके लिये अपना कल्याण कर सकता है अथवा भगवत्प्राप्ति कर सकता है अर्थात् जन्म-मरणके बन्धनसे भी मुक्त हो सकता है, परंतु इसके लिये अपने सनातन शास्त्रोंद्वारा निर्दिष्ट जीवनप्रक्रियाका अनुपालन करना पड़ेगा।

हमारे शास्त्र परमात्मप्रभुकी आज्ञा हैं तथा प्राणिमात्रके कल्याणके विधान हैं, भगवान् कहते हैं कि जो मेरी आज्ञाका उल्लंघन करता है, वह मेरा द्वेषी तथा वैष्णव होनेपर भी मेरा प्रिय नहीं है—

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लङ्घ्य वर्तते।

आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान्की वाणी है, इसमें मुख्यरूपसे मनुष्यको कर्तव्यपालन करनेकी शिक्षा प्रदान की गयी है। गीतामें अर्जुनकी इस जिज्ञासापर कि कर्तव्य क्या है, इसका निर्णय कैसे किया जाय? भगवान्ने कहा—कर्तव्य (क्या करना चाहिये) और अकर्तव्य (क्या नहीं करना चाहिये)—की व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण हैं। यह समझकर हमें शास्त्रविधिसे ही अपना कर्म करना चाहिये—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

(गीता १६।२४)

भगवान् तो यहाँतक कहते हैं कि जो पुरुष शास्त्रविधिका त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न तो सिद्धिको प्राप्त होता है, न उसे सुख मिलता है और न उसे परम गति ही प्राप्त होती है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(गीता १६।२३)

शास्त्रकी परम्परामें जीवनके सभी क्रियाकलापोंके लिये विधि-निषेधका एक विधान बना हुआ है। जो इस विधानके अन्तर्गत अपने क्रियाकलापोंका सम्पादन करता है, वह वस्तुतः भगवान्की आज्ञाका पालन करता है,

उसके वे सभी क्षण, जो अनिवार्यरूपसे दैनिक चर्या आदि कार्यकलापोंके सम्पादनमें लगते हैं, वे क्षण भी उसके पुण्यार्जनमें सहायक होते हैं। यदि भावना शुद्ध हो तो सभी कार्यकलाप भगवदाराधनके रूपमें परिणत हो जाते हैं।

यदि अपने २४ घण्टेके समयमें २ घण्टेका समय भगवान्की पूजा तथा परमार्थके शुभ कार्योंमें लगाया तो शुभकार्यका पुण्य हमें अवश्य प्राप्त होगा, परंतु साथ ही यह प्रश्न उठता है कि बचे हुए २२ घण्टेका समय हमने किस रूपमें बिताया। यदि यह समय अशास्त्रीय निषिद्ध भोगविलासमें तथा उन भोग्यपदार्थोंके साधन-संचयमें असत्य और बेईमानीका आश्रय लेकर लगाया तो उसका पाप भी अवश्य भोगना पड़ेगा। इस प्रकार पुण्य कम और पाप बहुत अधिक होनेके कारण ही जीव पशु-पक्षी, तिर्यक् आदि चौरासी लाख योनियोंमें भटकने लगता है, इसलिये भगवत्कृपासे मनुष्ययोनि प्राप्त होनेपर अत्यधिक सावधानीकी आवश्यकता है। जो अपना सर्वविध कल्याण चाहते हैं, उन्हें शास्त्रकी विधिके अनुसार अपनी जीवनचर्या एवं दैनिक चर्या बनानी चाहिये। यह मनुष्यमात्रका धर्म है और उसका कर्तव्य है। परंतु इसका पुण्यलाभ अदृष्ट है अर्थात् प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देता। मृत्युके बाद भी शाश्वत रूपमें इसका फल प्राप्त होता रहता है।

आजकल भौतिकविज्ञान एवं आधुनिक वातावरणसे प्रभावित कई लोग किसी भी कार्यको करनेमें दृष्टलाभकी अर्थात् प्रत्यक्ष दीखनेवाले लाभकी अपेक्षा करते हैं। वास्तवमें संसारमें दीखनेवाली सभी वस्तुएँ और पदार्थ अनित्य और असत्य हैं अर्थात् ये समाप्त होनेवाले हैं। इसलिये इन्हें अनात्म पदार्थ कहा जाता है, जबतक जीवन है तभीतक इनका उपयोग है, बादमें सब यहाँ ही छूट जानेवाले हैं। इनका कोई स्थायी अस्तित्व नहीं है। परमात्मप्रभु ही सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हैं, जो प्रायः इन भौतिक आँखोंसे नहीं दीखते, अतः परमात्मप्रभुकी प्राप्ति ही मनुष्यका शाश्वत कल्याण है।

इस दृष्टिसे धार्मिक कार्यक्रमोंका मुख्य फल अदृष्ट ही है, जो प्रायः दीखता नहीं अर्थात् दूसरे जन्मोंमें भी प्राप्त

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्धधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ (मनु० ४। १५५—१५८)

दिनचर्या

प्रातःजागरण

पूर्ण स्वस्थ रहनेके लिये कल्याणकामी व्यक्तिको प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें (अर्थात् सूर्योदयसे ३ घंटेसे १^१/_२ घण्टे पूर्वतक) शय्याका त्याग करना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्त तथा उषःकालकी बड़ी महिमा है, इस समय उठनेवालेका स्वास्थ्य, धन, विद्या, बल और तेज बढ़ता है, जो सूर्योदयके समय सोता है, उसकी उम्र और शक्ति घटती है तथा वह नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार होता है।

आयुर्वेदशास्त्रमें यह बताया गया है कि ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेसे वर्ण, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, स्वास्थ्य तथा आयुकी प्राप्ति होती है, उसका शरीर कमलकी तरह प्रफुल्लित हो जाता है।

वर्ण कीर्ति मतिं लक्ष्मीं स्वास्थ्यमायुश्च विन्दति।

ब्राह्मे मुहूर्ते सज्जाग्रच्छ्रियं वा पङ्कजं यथा॥

(भै० सार० ९३)

धर्मशास्त्रोंमें भी कहा है कि 'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत' अर्थात् सभीको ब्राह्ममुहूर्तमें उठ जाना चाहिये। इस समय वायु अत्यन्त शीतल तथा मधुर होती है। यह समय ब्रह्मका चिन्तन करनेके लिये सर्वोत्तम है, इसीलिये इसे ब्राह्ममुहूर्त कहा जाता है। वैसे इस समय जो भी कार्य किया जाय, वह बहुत अच्छा होता है। इस समयमें चन्द्रकिरणोंसे अमृतका क्षरण होता है, इसलिये इस कालको अमृतवेला भी कहा जाता है।

करदर्शन

प्रातःकाल उठते ही शयन-शय्यापर सर्वप्रथम करतल (दोनों हाथोंकी हथेलियों) के दर्शनका विधान है। करतलका दर्शन करते हुए निम्नलिखित श्लोकका पाठ करना चाहिये—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।

करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

इस श्लोकमें धनकी अधिष्ठात्री लक्ष्मी, विद्याकी अधिष्ठात्री सरस्वती तथा कर्मके अधिष्ठाता ब्रह्माकी स्तुति की गयी है। इस मन्त्रका आशय है कि मेरे कर (हाथ) के अग्रभागमें भगवती लक्ष्मीका निवास है, कर (हाथ) के मध्यभागमें सरस्वती तथा कर (हाथ) के मूलभागमें ब्रह्मा निवास करते हैं। प्रभातकालमें मैं हथेलियोंमें इनका

दर्शन करता हूँ। इससे धन तथा विद्याकी प्राप्तिके साथ-साथ कर्तव्यकर्म करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। भगवान् वेदव्यासने करोपलब्धिको मानवका परम लाभ माना है। भगवान्ने हमें विवेकशक्ति इसलिये प्रदान की है कि हम अपने हाथोंसे सदा सत्कर्म करते रहें। करावलोकनके विधानका आशय यह भी है कि प्रातःकाल उठते ही दृष्टि कहीं और न जाकर अपने करतलमें ही देवदर्शन करे, जिससे वृत्तियाँ भगवच्चिन्तनकी ओर प्रवृत्त हों, बुद्धि सात्त्विक बनी रहे तथा पूरा दिन शुभ कार्योंमें बीते।

भूमिवन्दना

इस प्रकार करदर्शनके अनन्तर व्यक्तिको चाहिये कि वह पृथ्वीमाताकी वन्दना करे। पृथ्वी सबकी माता हैं, धरित्री हैं, उन्होंने सबको धारण कर रखा है, वे सभीके लिये पूज्य हैं, वन्द्य हैं तथा आराधनाके योग्य हैं। भगवान् विष्णुकी दो पत्नियाँ हैं—१-महादेवी लक्ष्मी (श्रीदेवी) तथा दूसरी हैं भूदेवी (पृथ्वी)। निद्रा-परित्यागके अनन्तर चूँकि हमें अपने शयनके आसनसे भूमिपर उतरना है तो पाँव रखना पड़ेगा और अपनी माताके ऊपर कौन ऐसा है, जो पाँव रखेगा? परन्तु पाँव रखे बिना भी आगेके कर्म सम्पादित होने असम्भव हैं। अतः इसी विवशताके कारण पृथ्वीमाताकी सर्वप्रथम वन्दना की जाती है और निम्नलिखित प्रार्थनाके द्वारा उनसे क्षमा माँगी जाती है, भूमिपर पाँव रखनेसे पूर्व निम्न श्लोक पढ़ना चाहिये—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।

विष्णुपति नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे॥

इसका भाव यह है कि हे पृथ्वीदेवि! आप समुद्ररूपी वस्त्रोंको धारण करनेवाली हैं, पर्वतरूपी स्तनोंसे सुशोभित हैं तथा भगवान् विष्णुकी आप पत्नी हैं, आपको नमस्कार है, मेरे द्वारा होनेवाले पादस्पर्शके लिये आप मुझे क्षमा करें।

मंगल-दर्शन एवं गुरुजनोंका अभिवादन

प्रातः-जागरणके बाद यथासम्भव सर्वप्रथम मांगलिक वस्तुएँ (गौ, तुलसी, पीपल, गंगा, देवविग्रह आदि) जो भी उपलब्ध हों, उनका दर्शन करना चाहिये तथा घरमें माता-पिता एवं गुरुजनों, अपनेसे बड़ोंको प्रणाम करना चाहिये। अपनेसे बड़ोंको प्रणाम करनेका बड़ा लाभ है। अभिवादन

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

संस्कृत भाषाके संकल्पको उच्चारण करनेमें असुविधा हो तो मानसिक संकल्प भी किया जा सकता है। श्वास-प्रश्वासके साथ सहज होनेवाले हंस मन्त्रके जपको भगवान्को भावपूर्वक मनसे समर्पित कर देना चाहिये तथा दूसरे दिनका प्रतिज्ञा-संकल्प भी मानसिक कर लेना चाहिये।

करनेके लिये सांसारिक कार्योंमें प्रवृत्त होने जा रहा हूँ। इस प्रार्थनामें अपनी दैनिक चर्या प्रारम्भ करनेके पूर्व भगवान्की आज्ञा प्राप्त की जाती है तथा उनकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये हम अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं।

अजपाजप^१

सामान्यतया प्रत्येक स्वस्थ मनुष्यके चौबीस घंटेमें २१६०० श्वास आते हैं। सन्तों-महात्माओंकी यह आज्ञा है कि कम-से-कम इतना नाम-जप प्रत्येक व्यक्तिको प्रतिदिन करना चाहिये। इसके लिये शास्त्रने एक बड़ा सुगम साधन बताया है—अजपाजप। इस साधनसे पता चलता है कि जीवपर भगवान्की कितनी असीम अनुकम्पा है। अजपाजपका संकल्प कर लेनेपर २४ घंटेमें एक क्षण भी व्यर्थ नहीं हो पाता। चाहे हम जागते हों, स्वप्नमें हों या सुषुप्तिमें हों—प्रत्येक स्थितिमें ‘हंस’^२ का जप श्वासक्रियाद्वारा अनायास होता ही रहता है। संकल्प कर देनेमात्रसे यह जप उस व्यक्ति (मनुष्य)–द्वारा किया हुआ माना जाता है।^३

(क) किये हुए अजपाजपके समर्पणका संकल्प—
‘ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णु अद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे भारतवर्षे ...स्थाने ...नामसंवत्सरे ...ऋतौ ...मासे ...पक्षे ...तिथौ ...दिने प्रातःकाले ...गोत्रः ...शर्मा (वर्मा/गुप्तः) अहं ह्यस्तनसूर्योदयादारभ्य अद्यतनसूर्योदयपर्यन्तं श्वासक्रियया भगवता कारितं ‘अजपागायत्रीजपकर्म’ भगवते समर्पये।
ॐ तत्सत् श्रीब्रह्मार्पणमस्तु।’

(ख) आज किये जानेवाले अजपाजपका संकल्प—
किये गये अजपाजपको भगवान्को अर्पितकर आज सूर्योदयसे लेकर कल सूर्योदयतक होनेवाले अजपाजपका संकल्प करे—‘ॐ विष्णु’ से प्रारम्भकर‘अहं’ तक बोलनेके बाद

आगे कहे—अद्य सूर्योदयादारभ्य श्वस्तनसूर्योदयपर्यन्तं षट्शताधिकैकविंशतिसहस्र (२१६००)–संख्याकोच्छ्वासनिःश्वासाभ्यां हंसं सोऽहंरूपाभ्यां गणेशब्रह्मविष्णु-महेशजीवात्मपरमात्मगुरुप्रीत्यर्थमजपागायत्रीजपं करिष्ये।

संस्कृत भाषाके संकल्पको उच्चारण करनेमें असुविधा हो तो मानसिक संकल्प भी किया जा सकता है। श्वास-प्रश्वासके साथ सहज होनेवाले हंस मन्त्रके जपको भगवान्को भावपूर्वक मनसे समर्पित कर देना चाहिये तथा दूसरे दिनका प्रतिज्ञा-संकल्प भी मानसिक कर लेना चाहिये।

उषःपान

आयुर्वेदके अनुसार प्रातःकाल सूर्योदयके पूर्व तथा शौचसे पहले जल पीनेकी विधि भी है। रात्रिमें ताम्रपात्रमें ढँककर रखा हुआ जल प्रातःकाल कम-से-कम आधा लीटर अथवा सम्भव हो तो सवा लीटरतक पीना चाहिये, इसे उषःपान कहा जाता है, इससे कफ, वायु एवं पित्त (त्रिदोष)–का नाश होता है तथा व्यक्ति बलशाली एवं दीर्घायु होता है, मल साफ होता है, पेटके विकार दूर होते हैं। भारतीय शास्त्रोंमें कही गयी सभी बातें वैज्ञानिक हैं, धार्मिक हैं और ऐसी भी बातें बतायी गयी हैं, जो विज्ञानकी कल्पनासे भी बाहर हैं।

शौचाचार

इसके बाद मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। मल-मूत्रका त्याग करते समय सिरको कपड़ेसे ढक लेना चाहिये अथवा जनेऊको बायें कानसे सटाकर सिरके ऊपरसे दाहिने कानमें लपेट लेना चाहिये। इस क्रियासे रक्त तथा वायुकी गति अधोमुखी होनेसे मलत्यागमें सहायता मिलती है और शरीरके उत्तम तथा पवित्र अंग सिर आदिकी मलके परमाणुओंसे रक्षा होती है। शौचके समय

१–(क) ‘न जप्यते, नोच्चार्यते (अपितु श्वासप्रश्वासयोगमनागमनाभ्यां सम्पाद्यते) इति अजपा।’ (शब्दकल्पद्रुम) अर्थात् बिना जप एवं उच्चारण किये केवल श्वासके आने-जानेसे जो जप सम्पन्न होता है, उसे ‘अजपा’ कहते हैं।

(ख) अग्निपुराणमें बतलाया गया है कि श्वास-प्रश्वासद्वारा ‘हंसः’, ‘सोऽहं’ के रूपमें शरीरस्थित ब्रह्मका ही उच्चारण होता रहता है, अतः तत्त्ववेत्ता इसे ही ‘जप’ कहते हैं।

उच्चरति स्वयं यस्मात् स्वदेहावस्थितः शिवः। तस्मात् तत्त्वविदां चैव स एव जप उच्यते ॥ (२१४।२४)

२–(क) उच्छ्वासश्चैव निःश्वासो हंस इत्यक्षरद्वयम्। तस्मात् प्राणस्थहंसाख्य आत्माकारेण संस्थितः ॥

(ख) परमात्माको ‘हंस’ इसलिये कहा जाता है कि वह जीवोंके भटकावका हनन कर देता है—‘हन्ति जीवसंसारमिति हंसः।’ (उत्तरगीता १।५ में गौडपादाचार्य)

(ग) भगवान्ने हंसावतार धारण भी किया था। (देखिये श्रीमद्भा० ११।१३)

३–अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी। तस्याः संकल्पमात्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ (आचाररत्नमें अंगिरा, आचारभूषण)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ऊपर-नीचेके दाँतोंको जोरसे सटाकर रखना चाहिये, इससे दाँत मजबूत होते हैं, बहुत दिनोंतक चलते हैं, दाँतोंकी कोई बीमारी नहीं होने पाती। मल-मूत्रका त्याग करते समय मौन रहना चाहिये। चोटी (शिखा) खुली रखनी चाहिये एवं ज्यादा जोर नहीं लगाना चाहिये।

सामान्यतः पेशाब करके पानीसे मूत्रेन्द्रियको जरूर धोना चाहिये। मलत्यागके बाद मिट्टीसे गुदा आदि जरूर धो लें, इससे बवासीरकी बीमारी नहीं होती। शास्त्रानुसार लिंगको एक बार तथा गुदाको तीन बार मिट्टी लगाकर धो लेना चाहिये। बायें हाथको दस बार और दोनों हाथोंको मिलाकर सात बार तथा पैरको भी मिट्टीसे धोनेकी विधि है। शौचके बाद बारह कुल्ले तथा लघुशंकाके बाद चार कुल्ले करनेका विधान है।

परिस्थितिभेदसे शौचकी यह प्रक्रिया बदल जाती है। स्त्री और शूद्रके लिये तथा रातमें अन्योके लिये भी यह आधी हो जाती है। यात्रा (मार्ग)–में चौथाई बरती जाती है। रोगियोंके लिये यह प्रक्रिया उनकी शक्तिपर निर्भर हो जाती है। शौचका उपर्युक्त विधान स्वस्थ गृहस्थोंके लिये है।^१

साबुनसे शुद्धि नहीं—आजकल आधुनिक वातावरणमें मिट्टीके स्थानपर साबुनसे हाथ धोनेकी प्रक्रिया चल रही है, परंतु शास्त्रानुसार साबुनसे शुद्धि और पवित्रता नहीं होती। यह मिट्टीसे ही प्राप्त है। आजकल तो अधिकतर चर्बीयुक्त साबुन बनते हैं, जो और भी अशुद्ध हैं। इससे हाथ धोनेपर कभी-कभी स्वच्छताकी प्रतीति तो होती है, परंतु वास्तवमें पवित्रता प्राप्त नहीं होती। वैसे भी मलमें घृत-तेलकी तथा पित्तकी स्निग्धता—चिकनाहट मिली रहती है, उसकी शुद्धि रुक्ष तथा क्षारयुक्त मिट्टी या राखसे जितनी अच्छी तरह होती है, वैसी स्निग्ध साबुनसे नहीं होती।

आभ्यन्तर शौच^२—मिट्टी और जलसे होनेवाला यह शौचकार्य बाहरी है, इसकी भी आवश्यकता है, किंतु आभ्यन्तर (आन्तरिक) शौचके बिना यह प्रतिष्ठित नहीं

हो पाता। मनोभावको शुद्ध रखना आभ्यन्तर शौच माना जाता है। किसीके प्रति ईर्ष्या, राग-द्वेष, लोभ, मोह, मद-मात्सर्य, घृणा आदिके भावका न होना आभ्यन्तर शौच है। व्याघ्रपादका कथन है कि यदि पहाड़ जितनी मिट्टी और गंगाके समस्त जलसे जीवनभर कोई बाह्य शुद्धिकार्य करता रहे, किंतु उसके पास आन्तरिक शौच न हो तो वह शुद्ध नहीं हो सकता।^३ अतः आभ्यन्तर शौच अति आवश्यक है। भगवान् सबमें विद्यमान हैं, इसीलिये किसीसे द्वेष-क्रोधादि क्यों किया जाय? सबमें भगवान्का दर्शन करते हुए सभी परिस्थितियोंको भगवान्का वरदान समझते हुए सबमें मैत्रीभाव रखे, साथ ही प्रतिक्षण भगवान्का स्मरण करते हुए उनकी आज्ञा समझकर शास्त्रविहित कार्य करता रहे।

दन्तधावन

शौचनिवृत्तिके पश्चात् व्यक्तिको दातौन तथा मंजनसे दाँतोंको साफ करना चाहिये। आजकल दाँतोंको साफ करनेके लिये ब्रशका प्रयोग लोग अधिक करते हैं, परंतु नीम तथा बबूल आदिकी दातौन दाँतोंकी सुरक्षाके लिये अधिक लाभप्रद हैं। रविवार, एकादशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, व्रत, श्राद्धादि दिनोंमें दातौन करनेका विधान नहीं है। अतः इन दिनोंमें केवल शुद्ध मंजनसे दाँत साफ करना श्रेयस्कर है। दाँत साफ करनेके बाद जीभीसे जीभ भी साफ करनी चाहिये।

व्यायाम तथा वायुसेवन

शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये, कार्य करनेकी सामर्थ्य बनाये रखनेके लिये, पाचनक्रिया तथा जठराग्निको ठीक रखनेके लिये, शरीरको सुगठित, सुदृढ़ और सुडौल बनानेकी दृष्टिसे अपने आयु, बल, देश और कालके अनुरूप नियमित रूपसे योगासन एवं व्यायाम अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्यक्ति सामान्यतः बीमार नहीं होते और उन्हें औषधिसेवनकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती।^४

सुबह और शामको नित्य खुली, ताजी और शुद्ध

१-स्त्रीशूद्रयोरर्धमानं शौचं प्रोक्तं मनीषिभिः । दिवा शौचस्य निश्चयर्धं पथि पादो विधीयते ॥

आर्तः कुर्याद यथाशक्तिः शक्तः कुर्याद यथोदितम् ॥ (आचारभूषणमें आदित्यपुराण, दक्षस्मृति)

२-शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा । मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥ (दक्षस्मृति ५।३)

३-गङ्गातोयेन कृत्स्नेन मृदुभारैश्च नगोपमैः । आमृत्योश्चाचरन् शौचं भावदुष्टो न शुद्ध्यति ॥

(आचारेन्दुमें व्याघ्रपाद, यही भाव दक्षस्मृतिका है।)

४-(क) लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः । विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥ (अ०ह०सू० २।१०)

(ख) वयोबलशरीराणि देशकालाशनानि च ॥ समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात् । (सु०चि० २४। ४८-४९)

५. स्नानं प्रतिदिनं कुर्यान्मन्त्रपूतेन वारिणा । प्रातःस्नानेन योग्यः स्यान्मन्त्रस्तोत्रजपादिषु ॥

कर्म करनेसे होगा।

पञ्चयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात्॥

(६।३)

जो नील वस्त्र धारण करके स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, पंचमहायज्ञ आदि कर्म करता है, उसके वे कर्म निष्फल हो जाते हैं।

ऊनी तथा रेशमी वस्त्र बिना धोये भी प्रयोगमें लिये जा सकते हैं। वे शुद्ध माने जाते हैं।

निष्कर्षरूपमें वस्त्रोंको धारण करनेसे सरदी, गरमी तथा लज्जानिवारण आदि मुख्य उद्देश्योंकी पूर्ति होती तथा शरीरविज्ञानानुसार कोई रोग उत्पन्न न होकर रोगोंका नाश होता हो एवं मनोविज्ञानानुसार भोग-विलास, कामुकता आदि मानसिकरोग उत्पन्न न होकर सादगी आदि सत्त्वगुण बढ़ते हैं और आर्थिक, पारिवारिक तथा सामाजिक संकट उत्पन्न न करते हैं—ऐसे वस्त्रोंको ही धारण करना चाहिये। इन सबपर विचार करके ऋषियोंने जैसे वस्त्र धारण करनेका विधान किया है, वैसे ही वस्त्र धारण करने चाहिये।

नहानेके बाद सिरके केशोंको कंधीसे ठीक कर लिया जाय, जिससे कोई जीव-जन्तु या कूड़ेका कण सिरपर न रहने पाये। सिरपर कंधी करनेसे बुद्धिका विकास होता है।

पूजा-विधान

स्नान आदिके अनन्तर सन्ध्यावन्दन, तर्पण तथा अपने इष्टदेवके पूजन करनेकी विधि है। शिखा (चोटी), सूत्र (जनेऊ)–के बिना जो देवकार्य किये जाते हैं, वे सदा निष्फल होते हैं—

‘विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥’

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन द्विजातियोंको यज्ञोपवीत (जनेऊ) अवश्य धारण करना चाहिये। इसीसे वे सभ्यावन्दन तथा वैदिक देवपूजन कार्योंके अधिकारी होते हैं।

स्त्री एवं शूद्रके लिये यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करनेकी विधि नहीं है। वे केवल भगवन्नामका जप, कीर्तन एवं सेवाकार्यमें संलग्न रहें। उन्हें वही फल प्राप्त होगा, जो द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)–को वैदिक

पूजा किसी आसनपर ही बैठकर करनी चाहिये। लकड़ीकी चौकी, कुश, ऊनके आसनपर पूजाके लिये बैठनेका विधान है। देवपूजाके सभी कार्योंमें कुशके प्रयोगका विधान है तथा कुशासनको सर्वदोषरहित और सब मन्त्रोंकी सिद्धिमें सहायक कहा है।^१

शास्त्रोंमें कुछ आसनोंके निषेध-वचन प्राप्त हैं। धरतीमें बैठनेपर दुःखकी उत्पत्ति, पत्थरपर बैठनेसे व्याधि और पीड़ा, केवल वस्त्रपर बैठनेसे जप, ध्यान और तपकी हानि होती है।^२

आसनका एक दूसरा अर्थ भी है, पूजा-पाठमें सिद्धासन तथा पद्मासन आदि प्रशस्त माने गये हैं। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी इन आसनोंका महत्त्व है।

तिलक-धारण

पूजा-पाठ, भजन-ध्यान आदि कार्योंमें मनःशान्ति और एकाग्रताकी ही प्रधानता है। मनका स्थान मस्तिष्क है। अतः मनको स्वस्थ, शान्त और सात्त्विक रखनेकी दृष्टिसे माथेपर चन्दन, कपूर, केशर आदि पदार्थोंका लेप करना स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उत्तम है। इसी विज्ञानके अनुसार मनःप्रधान भजन-ध्यान, पूजा-पाठ आदि कार्य तथा दान, होम, तर्पण आदि सात्त्विक कर्मोंसे पूर्व तिलकको धारण करनेका विधान किया गया है तथा तिलक बिना इन कर्मोंको निष्फल बताया है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा गया है—

स्नानं दानं तपो होमो देवतापितृकर्म च।

तत्सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना ॥

धर्मशास्त्रमें कहा गया है—

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा धार्य भस्मना तु त्रिपुण्ड्रकम् ।

उभयं चन्दनेनैव सर्वेषु शुभकर्मसु ॥

मृत्तिका (गोपीचन्दन)-से ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। सभी शुभ कर्मोंमें चन्दनसे दोनों प्रकारका तिलक किया जा सकता है।

कुमकुम (रोली)-का प्रयोग भी तिलकमें किया जाता है, विशेषकर सौभाग्यवती माताओंको कुमकुमका तथा सिन्दरका तिलक ही करना चाहिये। सिन्दरमें

१-भूमौ दर्भासने रम्ये सर्वदोषविवर्जिते । कुशासने मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ॥

२-धरण्यां दःखसम्भतिः पाषाणे व्याधिपीडनम् । जपध्यानतपोहानि वस्त्रासनं करोति हि ॥

सर्वदोषनाशक शक्ति रहती है। तिलकके अतिरिक्त माँगमें सिन्दूर लगानेसे सिरके बालोंमें जूँ लीखका भय नहीं रहता। इसलिये शास्त्रकारोंने इसे एक प्रकारसे सौभाग्यका चिह्न माना है। ऊपर लिखे तिलकके द्रव्योंमेंसे यदि कोई द्रव्य किसी समय पासमें न हो तो केवल शुद्ध जलसे भी तिलक करनेका विधान किया गया है, क्योंकि जल भी शोधक है।

इस प्रकार धर्मशास्त्रके आदेशके अतिरिक्त तिलकके भौतिक गुणोंको समझकर भी तिलक अवश्य करना चाहिये।

शिखाबन्धन

भारतीय संस्कृति एवं सनातनधर्मके अनुसार सिरके पिछले भागपर शिखा (चोटी) अवश्य रखनी चाहिये। आध्यात्मिक विज्ञानके अनुसार तो जिस प्रकार किसी भवन तथा मन्दिरके शिखरपर ध्वजा लगायी जाती है, उसी प्रकार यह शरीर भी एक प्रकारका मन्दिर है, इसमें आत्मरूपसे परमात्मा निवास करते हैं। अतः इसके शिखरपर शिखा (चोटी) —रूपी ध्वजा होनी आवश्यक है। भौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे जहाँ शिखा रखी जाती है, वहाँ मेरुदण्डके भीतर रहनेवाली ज्ञान तथा क्रियाशक्तिकी आधार सुषुम्णा नाड़ी समाप्त होती है। यह स्थान शरीरका सर्वाधिक मर्मस्थान है, इस स्थानपर चोटी रखनेसे मर्मस्थान सुरक्षित रहनेसे क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्ति सुरक्षित रहती है, जिससे भजन, ध्यान, दान आदि शुभ कर्म सचारु रूपमें सम्पन्न होते हैं, इसीलिये धर्मशास्त्रोंमें कहा है—

ध्याने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने ।

शिखाग्रन्थिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत् ॥

अमक दिशामें मख

प्रातःकालीन सन्ध्यावन्दनादि कर्मोंमें सूर्योपासना प्रधान होनेके कारण सूर्यके सम्मुख पूर्वकी ओर मुँह करके तथा सायंकालीन सन्ध्यामें पश्चिमकी ओर मुख करके सन्ध्योपासना करनी चाहिये। भौतिक दृष्टिसे प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञानानुसार प्रातःकाल तथा सायंकाल सूर्यकी किरणोंका सेवन हो जानेसे शारीरिक रोगोंका नाश होता है। धर्मशास्त्रोंमें देवकार्य पूर्वाभिमुख होकर और पितरोंका कार्य दक्षिणमुख होकर करनेका विधान है। उत्तरकी ओर मुख करके योगाभ्यास करनेका विधान भी किया गया है—

उत्तराभिमुखो भूत्वा.....योगाभ्यासं स्थितश्चरन् ॥

(त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् १८-१९)

इस प्रकार विशेष कार्योके लिये दिशा-निर्देशका विधान विशेष विज्ञानका अनुसन्धान करके ही किया गया है। अतः उसी दिशामें मुख करके वह कर्म करना चाहिये।

सन्ध्या-तर्पण एवं इष्टदेवका पूजन

द्विजको यथासाध्य त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न तथा सायं) सन्ध्या करनी चाहिये। कम-से-कम दो कालोंकी सन्ध्या तो अवश्य ही करनी चाहिये। जो द्विज प्रतिदिन प्रमादवश सन्ध्या नहीं करता, वह द्विजकर्मोंसे बहिष्कार करनेयोग्य होता है और उसे भयानक नरक-यातना भोगनी पडती है।

रात्रिका अधिपति चन्द्रमा है, वही हमारे मनका देवता है, दिनका अधिपति सूर्य है, वही हमारे प्राणोंका संचालक है। मन तथा प्राणोंके सन्धिकालमें सत्त्वगुण बढ़ता है, ऐसी दशामें भजन, ध्यान, सन्ध्योपासना करना अति उत्तम माना जाता है, यही कारण है कि दोनों सन्ध्याओंमें सन्ध्योपासना करनेका अनिवार्य विधान है। ‘अहरहः सन्ध्यामुपासीत’ (वेद)। द्विजको वैदिक मन्त्रोंसे प्रातः तथा सायं सन्ध्योपासना अवश्य करनी चाहिये।

स्त्री तथा शूद्रोंको भी वैदिक मन्त्रोंके बिना पौराणिक मन्त्रोंसे अथवा बिना किसी मन्त्रके केवल भगवन्नामका उच्चारण करते हुए भगवान्की उपासना करनी चाहिये। उपासनाके लिये यह समय अति उपयोगी होनेके कारण इस समय दूसरे कर्म करनेका शास्त्रोंने निषेध किया है।

संकल्प—आसनपर बैठकर तिलकधारण और शिखाबन्धन करनेके बाद संकल्प करना चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण कर्मोंकी सफलतामें दृढ़ संकल्पका सर्वाधिक माहात्म्य है। मनुस्मृति (२।३) में कहा है कि समस्त कामनाएँ, यज्ञ, व्रत, नियम, धर्म संकल्पजन्य ही हैं—

सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः ।

व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥*

प्राणायाम

भजन, ध्यान, पाठ, पूजा आदि सात्त्विक कार्योके लिये शान्त और सात्त्विक मनकी परम आवश्यकता होती है। प्राणायामद्वारा प्राणकी समगति (दो स्वरोसे बराबर चलना) होनेपर मन शान्त और सात्त्विक हो जाता है। यही प्राणायामका आध्यात्मिक प्रयोजन है। प्राणायामसे शारीरिक लाभ भी है। हमारा जीवन श्वास-प्रश्वासरूप प्राणोंकी गतिपर आधारित है। इस कार्यको जिन फेफड़ोंद्वारा किया

सफलताके सोपान

है, जो स्वयंमें एक औषधि है। आयुर्वेदमें औषधियोंके साथ अनेक रोगोंमें तुलसीका अनुपानरूपसे विधान किया गया है। इस प्रकार चरणामृत अनेक रोगोंका नाशक तथा जीवनीशक्तिवर्धक गुणोंसे युक्त है। इस कारण इसे **अकालमृत्युहरणम्, सर्वव्याधिविनाशनम्** कहना उचित ही है।

देवोपासना

जीवनमें उपासनाका विशेष महत्त्व है। जब मनुष्य अपने जीवनका वास्तविक लक्ष्य निर्धारित कर लेता है, तब वह तन-मन-धनसे अपने उस लक्ष्यकी प्राप्तिमें संलग्न हो जाता है। मानवका वास्तविक लक्ष्य है भगवत्प्राप्ति। इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये उसे यथासाध्य संसारकी विषय-वासनाओं और भोगोंसे दूर रहकर भगवदाराधन एवं अभीष्टदेवकी उपासनामें संलग्न होनेकी आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार गंगाका अविच्छिन्न प्रवाह समुद्रोन्मुखी होता है, उसी प्रकार भगवद्गुण-श्रवणके द्वारा द्रवीभूत निर्मल, निष्कलंक, परम पवित्र अन्तःकरणका भगवदुन्मुख हो जाना वास्तविक उपासना है—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।

मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥

(श्रीमद्भा० ३।२९।११)

इसके लिये आवश्यक है कि चित्त संसार और तद्विषयक राग-द्वेषादिके विमुक्त हो जाय। शास्त्रों और पुराणोंकी उक्ति है—‘**देवो भूत्वा यजेद् देवान् नादेवो देवमर्चयेत्।**’ देव-पूजाका अधिकारी वही है, जिसमें देवत्व हो। जिसमें देवत्व नहीं, वास्तवमें उसे देवार्चनसे पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती। अतः उपासकको भगवदुपासनाके लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेष, अभिमान आदि दुर्गुणोंका त्यागकर अपनी आन्तरिक शुद्धि करनी चाहिये। साथ ही शास्त्रोक्त आचार-धर्मको स्वीकारकर बाह्य शुद्धि कर लेनी चाहिये, जिससे उपासकके देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार तथा अन्तरात्माकी भौतिकता एवं लौकिकताका समूल उन्मूलन हो सके और उनमें रसात्मकता तथा पूर्ण दिव्यताका आविर्भाव हो जाय। ऐसा जब हो सकेगा, तभी वह उपासनाके द्वारा निखिल-रसामृतमूर्ति सच्चिदानन्दधन

भगवत्स्वरूपकी अनुभूति प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकेगा।

यहाँ शास्त्रोंमें वर्णित देवोपासनाकी कुछ विधियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

नित्योपासनामें दो प्रकारकी पूजा बतायी गयी है— १-मानसपूजा और २-बाह्यपूजा। साधकको दोनों प्रकारकी पूजा करनी चाहिये, तभी पूजाकी पूर्णता है। अपनी सामर्थ्य और शक्तिके अनुसार बाह्यपूजाके उपकरण अपने आराध्यके प्रति श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निवेदन करना चाहिये। शास्त्रोंमें लिखा है कि ‘**वित्तशाठ्यं न समाचरेत्**’ अर्थात् देव-पूजनादि कार्योंमें कंजूसी नहीं करनी चाहिये। सामान्यतः जो वस्तु हम अपने उपयोगमें लेते हैं, उससे हल्की वस्तु अपने आराध्यको अर्पण करना उचित नहीं है। वास्तवमें भगवान्को वस्तुकी आवश्यकता नहीं है, वे तो भावके भूखे हैं। वे उपचारोंको तभी स्वीकार करते हैं, जब निष्कपटभावसे व्यक्ति पूर्ण श्रद्धा और भक्तिसे निवेदन करता है।

बाह्यपूजाके विविध विधान हैं, यथा—राजोपचार, सहस्रोपचार, चतुःषष्ट्युपचार, षोडशोपचार और पंचोपचार-पूजन आदि। यद्यपि सम्प्रदाय-भेदसे पूजनादिमें किंचित् भेद भी हो जाते हैं, परंतु सामान्यतः सभी देवोंके पूजनकी विधि समान है। गृहस्थ प्रायः स्मार्त होते हैं, जो पंचदेवोंकी पूजा करते हैं। पंचदेवोंमें १-गणेश, २-दुर्गा, ३-शिव, ४-विष्णु और ५-सूर्य हैं। ये पाँचों देव स्वयंमें पूर्ण ब्रह्मस्वरूप हैं। साधक इन पंचदेवोंमें एकको अपना इष्ट मान लेता है, जिन्हें वह सिंहासनपर मध्यमें स्थापित करता है। फिर यथालब्धोपचार-विधिसे उनका पूजन करता है।

भगवत्पूजा अतीव सरल है, जिसमें उपचारोंका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। महत्त्व भावनाका है। उस समय जो भी उपचार उपलब्ध हो जायँ, उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निश्छल दैन्यभावसे भगवदर्पण कर दिया जाय तो उस पूजाको भगवान् अवश्य स्वीकार करते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९।२६)

अर्थात् जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि, निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्प

नीचे लिखी जा रही है—

विशिष्ट उपासना

विशेष अवसरोंपर जो देवाराधन किया जाता है, जैसे—नवरात्रके अवसरपर दुर्गापूजा, सप्तशतीका पाठ, रामायण आदिके नवाह—पाठ, श्रावण आदि पवित्र महीनोंमें लक्ष—पार्थिवार्चन, महारुद्राभिषेक, श्रीमद्भागवतसप्ताह आदि विशेष प्रकारके अनुष्ठान विशिष्ट उपासनाएँ हैं। आरोग्यता एवं दीर्घजीवन—प्राप्तिके निमित्त महामृत्युंजयका जप एवं धन, सन्तान तथा अन्य कामनाओंके निमित्त किये जानेवाले अनुष्ठान भी इन्हींमें आते हैं, परंतु भगवत्प्रीतिके निमित्त किये गये अनुष्ठानका अनन्त फल शास्त्रोंमें बताया गया है, जो भी अनुष्ठान—साधन—भजन किया जाय, वह अनात्म (संसारकी) वस्तुओंकी प्राप्तिके निमित्त नहीं, अपितु भगवान्की प्रसन्नता—प्राप्तिके लिये ही करना चाहिये।

मानस-पूजा

बाह्यपूजाके साथ-साथ मानसपूजाका भी अत्यधिक महत्त्व है। पूजाकी पूर्णता मानसपूजनमें ही हो जाती है। भगवान्को किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, वे तो भावके भूखे हैं। संसारमें ऐसे दिव्य पदार्थ उपलब्ध नहीं हैं, जिनसे परमेश्वरकी पूजा की जा सके। इसलिये शास्त्रोंमें मानस-पूजाका विशेष महत्त्व माना गया है। मानस-पूजामें भक्त अपने इष्टदेवकी मानसिक मूर्तिकी कल्पना अपने हृदयमें करता है तथा उन्हें मुक्तामणियोंसे मण्डितकर स्वर्णसिंहासनपर विराजमान करता है। स्वर्गलोककी मन्दाकिनी गंगाके जलसे अपने आराध्यको स्नान कराता है, कामधेनु गौके दुग्धसे पंचामृतका निर्माण करता है। वस्त्राभूषण भी दिव्य अलौकिक होते हैं। पृथ्वीरूपी गन्धका अनुलेपन करता है। अपने आराध्यके लिये कुबेरकी पुष्पवाटिकासे स्वर्णकमल-पुष्पोंका चयन करता है। भावनासे वायुरूपी धूप, अग्निरूपी दीपक तथा अमृतरूपी नैवेद्य भगवान्को अर्पण करनेकी विधि है। इसके साथ ही त्रिलोककी सम्पूर्ण वस्तु, सभी उपचार सच्चिदानन्दधन परमात्मप्रभुके चरणोंमें भावनासे भक्त अर्पण करता है। यह है मानस-पूजाका स्वरूप। इसकी एक संक्षिप्त विधि भी पुराणोंमें वर्णित है, जो

नीचे लिखी जा रही है—

१-ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि।

(प्रभो! मैं पृथिवीरूप गन्ध (चन्दन) आपको अर्पित करता हूँ।)

२-ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि।

(प्रभो! मैं आकाशरूप पुष्प आपको अर्पित करता हूँ।)

३-ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं आघ्रापयामि।

(प्रभो! मैं वायुदेवके रूपमें धूप आपको अर्पित करता हूँ।)

४-ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि।

(प्रभो! मैं अग्निदेवके रूपमें दीपक आपको अर्पित करता हूँ।)

५-ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि।

(प्रभो! मैं अमृतके समान नैवेद्य आपको निवेदित करता हूँ।)

६-ॐ सौं सर्वात्मकं सर्वोपचारं समर्पयामि।

(प्रभो! मैं सर्वात्माके रूपमें संसारके सभी उपचारोंको आपके चरणोंमें समर्पित करता हूँ।)—इन मन्त्रोंसे भावनापूर्वक मानस-पूजा की जा सकती है।

भोजन-विज्ञान

भोजन तैयार हो जानेपर सर्वप्रथम बलिवैश्वदेव एवं पंचबलि करना चाहिये तथा भगवान्का भोग लगाना चाहिये। पंचबलिका तात्पर्य है, भोजनमें जो सामग्री बनती है, वे सभी वस्तुएँ पाँच जगह निकाली जायँ। पहली बलि गोमाताके लिये, दूसरी श्वान (कुत्ते)–के लिये, तीसरी वायस (कौए)–के लिये, चौथी बलि देवोंके लिये और पाँचवीं पिपीलिका (चींटी आदि कीट-पतंगों)–के लिये संकल्पद्वारा प्रदान करनेकी विधि है। भगवान्के भोगमें तुलसीदल छोड़नेका विधान है। तुलसीदलका विशेष महत्त्व बताया गया है। इसका वैज्ञानिक रहस्य यह है कि भोजनमें तुलसीदल डालनेसे न्यूनातिन्यून परिमाणमें विद्यमान अन्नकी विषाक्तता तुलसीके प्रभावसे शमित हो जाती है—‘तुलसीदलसम्पर्कादनं भवति निर्विषम्।’ अतः जब भी भोजन करे तो पहले भगवान्को निवेदन करके प्रसादरूपसे ही ग्रहण करे। पैरोंको धोकर, भलीभाँति

बहुत प्यास लगी हो, पेटमें दर्द हो, शौचकी हाजत हो अथवा बीमार हो— ऐसे समय भोजन न करे। अपवित्र स्थानमें, सन्ध्याकालमें, गन्दी जगह, फूटी थाली आदिमें भोजन न करे। भोजन बनाने और परोसनेवाला मनुष्य दुराचारी, व्यभिचारी, चुगलखोर, छूतका रोगी, कोढ़ और खाज-खुजलीका रोगी, क्रोधी, वैरी और शोकसे ग्रस्त नहीं होना चाहिये। जिस आसनपर भोजन करने बैठे, उसे पहले झाड़ लेना चाहिये और सुखासनसे बैठकर भोजन करना चाहिये। भोजन करते समय गुस्सा न हो, कटु वचन न कहे। भोजनमें दोष न बतलाये, रोये नहीं, शोक न करे, जोरसे न बोले। किसी दूसरेको न छुए, वाणीका संयम करके अनिषिद्ध अन्नका भोजन करे। अन्नकी निन्दा न करे। बहुत गरम तथा बहुत ठण्डी चीज दाँतोंसे चबाकर न खाये। अधिक तीखा, अधिक कड़वा, अधिक नमकीन, अधिक गरम, अधिक रूखा, अधिक तेज भोजन राजसी है और अधकच्चा, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, बासी और जूठा अन्न तामसी है। राजसी, तामसी अन्नका, मांस-मद्यका तथा शास्त्रनिषिद्ध अन्नका त्याग करना चाहिये। भोजनके आदिमें अदरकको कतरकर उसके साथ थोड़ा नमक मिलाकर खाना अच्छा है। जीभके स्वादवश अधिक खा

भोजनादौ सदा विप्रैर्विधेयं परिषेचनम् । तेन कीटादयः सर्वे दूरं यान्ति न संशयः ॥

लेना उचित नहीं है।

एक थालीमें दो आदमी न खायँ। इसी प्रकार एक



कटोरे या गिलासमें दूध या पानी न पियें। सोये हुए न खायें। दूसरेके हाथसे न खायँ। दूसरेके आसनपर अथवा गोदमें लेकर अन्न न खायें।

ताँबेके बरतनमें दूध न रखें। जिस दूधमें नमक गिर गया हो, उसे कभी न पियें। पीतलके बरतनमें खट्टी चीज रखकर न खायँ। एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या आदि दिनोंको व्रत रखना चाहिये। व्रतके दिन निराहार रहे या परिमित आहार करे, केवल जल पीना अच्छा है।

रजस्वला स्त्रीका स्पर्श किया हुआ, पक्षीका खाया हुआ, कुत्तेका छुआ हुआ, गायका सूँघा हुआ, कीड़ा, लार, थूक आदि पड़ा हुआ, अपमानसे मिला हुआ तथा वेश्या, कलाल, कृतघ्नी, कसाई और राजाका अन्न नहीं खाना चाहिये।

भोजनमें चौकेकी व्यवस्था

धूल और दुर्गन्धरहित, प्रकाशयुक्त, शुद्ध हवादार स्थानमें भोजन बनाना चाहिये। चारों ओरसे घिरी हुई जगहमें बैठकर भोजन करना चाहिये। प्राचीन कालसे ही अपने यहाँ चौकेकी व्यवस्थापर बहुत ध्यान दिया जाता रहा है। चौकेके भीतर जो वैज्ञानिकता है, उसे आजकल लोग भूलते जा रहे हैं। चौका चार प्रकारकी शुद्धियोंका समुच्चय है और भोजनमें इन चारों प्रकारकी शुद्धियोंका आवश्यकता

है। इससे किया गया भोजन हमारे शरीरको स्वस्थ तथा मनको पवित्र बनाता है। ये चार शुद्धियाँ हैं—(१) क्षेत्रशुद्धि, (२) द्रव्यशुद्धि, (३) कालशुद्धि और (४) भावशुद्धि।

(१) क्षेत्रशुद्धि—भोजन करते समय हमें क्षेत्र या स्थानकी शुद्धिपर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता है; क्योंकि प्रत्येक स्थानका वायुमण्डल, वातावरण, पर्यावरण हमारे मन तथा तनको जब प्रभावित करता है तो हमारे भोजनको भी प्रभावित करेगा ही। यदि किसी व्यक्तिको मरघट या श्मशानभूमि अर्थात् किसी अपवित्र स्थानमें भोजन कराया जाय और उसी व्यक्तिको उपवन आदि किसी पवित्र स्थानपर भोजन कराया जाय तो इन दोनों स्थानोंके भोजन, पाचनमें पर्याप्त अन्तरका अनुभव होगा। इसी प्रकार बाजारोंमें, गलियों आदिके आस-पास, कूड़ा-कचरा और उनपर भिनभिनाती मक्खियाँ, मच्छर तथा खाद्यपदार्थोंपर जहाँ भूल जमी हो, ऐसे दूषित स्थानोंपर जब व्यक्ति चाट, पकौड़ी, मिष्ठान आदि खाता-पीता है तो कदाचित् वह भूल जाता है कि ऐसे स्थानोंका पर्यावरण पर्याप्त दूषित है। ऐसे वातावरणमें बैक्टीरिया, कीटाणु भोजनके साथ शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं, जो शरीरमें रुग्णता पैदा करते हैं। चौकेकी व्यवस्थाके अन्तर्गत यह क्षेत्रशुद्धि स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त वैज्ञानिक और लाभदायक है। प्राचीन परम्पराके अनुसार चौकेमें अनधिकृत व्यक्तिका प्रवेश निषिद्ध रहता था। केवल अधिकृत व्यक्ति ही भोजन छूनेके अधिकारी होते थे।

(२) **द्रव्यशुद्धि**—द्रव्य भी हमारे भोजनपर बड़ा असर डालता है। अनीति, अनाचार और बेईमानी आदि अधर्मके साधनोंके धनसे बनाया गया भोजन हमारे तन तथा मनको प्रभावित करता है। ऐसा भोजन हमारे परमाणुओंको सात्त्विक कभी भी नहीं बना सकता।

(३) कालशुद्धि—काल या समयका भी भोजनपर प्रभाव पड़ता है। जो लोग समयपर भोजन नहीं करते, वे प्रायः उदरसम्बन्धी व्याधियोंसे पीड़ित रहते हैं। भूख लगनेपर भोजन करना भोजनका सर्वोत्तम समय है तथा नियमित समयसे भोजन करना स्वास्थ्यके लिये उत्तम है। गृहस्थके लिये सूर्य रहते दिनमें भोजन करना चाहिये तथा दूसरे समयका भोजन सूर्यास्तके बाद करनेकी विधि है। मानवको हितकर भोजन उचित मात्रामें उचित समयपर

आदिसे निवृत्त होकर हाथ-पैर धोकर उन्हें भलीभाँति पोंछकर स्वच्छ बिछावनपर पूर्व या दक्षिणकी ओर सिर करके सोना चाहिये। हवादार घर जिसमें भगवान्‌के चित्र टँगे हों, शयनके लिये उत्तम स्थान माना गया है। भगवान्‌का ध्यान करके बायीं करवट सोना स्वास्थ्यके लिये उत्तम है। सामान्यतः ६-७ घण्टे सोनेपर नींद पूरी हो जाती है। अभ्यास कर लेनेपर छः घण्टेसे कम भी सोया जा सकता है। सोनेके समय मुँह ढककर या मोजा पहनकर नहीं सोना चाहिये। रातमें जल्दी सोना तथा प्रातःकाल जल्दी उठना स्वास्थ्यके लिये विशेष लाभप्रद है। शयनका स्थान हवादार, स्वच्छ तथा साफ होना चाहिये।

मनुष्य सोकर उठनेपर शान्त अन्तःकरणसे जिसका चिन्तन करता है, उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार सोनेके पूर्व जिसका चिन्तन करता हुआ सोता है, उसका भी प्रभाव पड़ता है। इसका कारण यह है कि उस विषयकी आवृत्ति अनेक बार निद्रा आ जानेतक हो जाती है, जिसका गुप्तरूपसे प्रवाह निद्रामें भी बना रहता है। इसीलिये सोनेसे पूर्व पुराणोंकी सात्त्विक कथा या भक्तगाथा श्रवण करके अथवा भगवन्नामका जप करते हुए सोनेका विधान किया गया है।

स्वास्थ्यरक्षाकी आवश्यक बातें

स्वास्थ्यरक्षाकी दृष्टिसे शास्त्रोक्त दिनचर्या ऊपर प्रस्तुत की गयी है, वस्तुतः स्वास्थ्यरक्षाके पाँच मूल आधार हैं—(१) आहार, (२) श्रम, (३) विश्राम, (४) मानसिक सन्तुलन और (५) पंचमहाभूतोंका सेवन।

(१) आहार—आहारके सम्बन्धमें ऊपर विस्तारसे वर्णन किया जा चुका है। आयुर्वेदमें तीन प्रकारके भोजनोंका उल्लेख मिलता है—(१) शमन करनेवाला भोजन, (२) कुपित करनेवाला भोजन तथा (३) सन्तुलन रखनेवाला भोजन। वात-पित्त और कफ—इन तीनोंके असन्तुलनसे रोगका जन्म होता है। ये तीनों रोगके प्रमुख कारण हैं। जो भोज्यपदार्थ इन तीनोंका शमन करते हैं, वे शमनकारी और जो इन तीनोंको कुपित करते हैं, वे कुपितकारी तथा जो तीनोंको सन्तुलित किये रहते हैं, उन्हें

सन्तुलनकारी भोजन कहा जाता है। इन तीनोंका स्वभावसे गहरा सम्बन्ध रहता है। इसलिये स्वभाव और परिस्थितिके अनुसार भोजन करनेकी अनुमति दी जाती है। शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्तिके भोजनकी मात्रा और उसका प्रकार जो होगा, वह मानसिक श्रमशील व्यक्तिके भोजनकी मात्रा और प्रकारसे भिन्न होगा।

आहारका सर्वोपरि सिद्धान्त तो यह है कि भूख लगनेपर आवश्यकतानुसार भूखसे कम मात्रामें भोजन करना चाहिये।

(२) **श्रम**—जीवनमें भोजनके साथ श्रमका कम महत्त्व नहीं है। आजकल श्रमके अभावमें आलस्य और प्रमादके कारण विभिन्न प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति हो रही है। ऐसे बहुत लोग हैं, जिन्हें जीवनमें कभी भी सच्ची भूखकी अनुभूति नहीं होती।

स्वस्थ रहनेके लिये दैनिक जीवनक्रममें कुछ घण्टे ऐसे बिताने चाहिये, जिससे सहज श्रम हो जाय। जो लोग स्वाभाविक रूपसे शारीरिक श्रम नहीं कर सकते, उन्हें व्यायाम, योगासन और भ्रमणके द्वारा श्रमशील होना चाहिये।

आजकल सिनेमा, होटल तथा क्लबोंमें जानेके लिये और टी.वी. आदि देखनेके लिये तो सरलतासे समय मिलता है, किंतु व्यायामके लिये समयके अभावकी शिकायत बनी रहती है। जो व्यक्ति श्रम या व्यायाम नियमित रूपसे करते हैं, उन्हें सामान्यतः दवा लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, वे स्वाभाविक रूपसे स्वस्थ रहते हैं।

(३) **विश्राम**—आहार तथा श्रमकी तरह विश्राम भी शरीरकी अनिवार्य आवश्यकता है। अत्यधिक परिश्रमसे थके व्यक्तिमें विश्रामके पश्चात् नवजीवनका संचार होता है। रातकी गहरी नींदसे शरीरमें पुनः नयी शक्ति तथा मनमें नयी उमंगका प्रादुर्भाव होता है। विश्रामके बाद श्रम और श्रमके बाद विश्राम—दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं।

प्रायः लोगे शरीरको तो विश्राम देते हैं, किंतु मनको विश्राम नहीं देते। शरीर एक स्थानपर पड़ा रहता है, किंतु मन इधर-उधर भटकता रहता है। नींदके समय शरीर

[४] **जल**—मानवको जलकी प्रचुर आवश्यकता है। मनुष्यके आहारमें ठोस पदार्थ कम और तरल पदार्थ अधिक मात्रामें रहता है। स्नान, भोजन, स्वच्छता और

सफाई—सभी कार्य जलके बिना सम्भव नहीं हैं। पशुपालन, खेती—बारी आदि सभी कार्य जलपर ही निर्भर करते हैं। अतः जल भी जीवन है।

[५] पृथ्वी—पृथ्वीमाताकी गोदमें हम जन्मसे लेकर मृत्युतक निरन्तर रहते हैं। पृथ्वी अर्थात् मिट्टीमें आकाश, वायु, जल तथा सूर्यके सहयोगसे अन्न, फल, मूल, वनस्पति और ओषधियों आदिकी उत्पत्ति होती है और इसीसे सभी प्राणियोंका भरण-पोषण तथा रोगोंकी चिकित्सा होती है। मिट्टीके विभिन्न प्रयोगोंसे अनेक रोगोंकी चिकित्सा होती है। मिट्टीकी पट्टी प्रायः सभी रोगोंमें उपयोगी है।

यह शरीर पंचमहाभूतोंसे बना है, इसलिये प्रकृतिमें आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी-तत्त्वकी प्रचुरता है, जिससे प्राणी मुक्तभावसे उनका उपयोग करके नीरोग और स्वस्थ रह सके।

कल्याणकामी मनुष्यके लिये आयुर्वेदशास्त्रके अन्तमें कुछ उपदेश प्रदान किये गये हैं, जो यहाँ प्रस्तुत हैं—

मानवको सभी प्रकारके पापोंसे बचना चाहिये। हितैषी मित्रोंको समझना तथा वंचक मित्रोंसे दूर रहना चाहिये। अभावग्रस्त, रुग्ण एवं दीनजनोंकी सहायता करनी चाहिये। क्षुद्रातिक्षुद्र चींटी आदि प्राणियोंको अपने समान समझना चाहिये। देवता, गौ, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा तथा अतिथिका सतत सत्कार करना चाहिये। याचकोंको विमुख नहीं जाने देना चाहिये और कठोर वचन कहकर उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। अपकार करनेवालेका भी निरन्तर उपकार करनेकी ही भावना रखनी चाहिये। फलकी कामनासे निरपेक्ष रहकर सम्पत्ति और विपत्तिमें सदा समबुद्धि रखनी चाहिये।^१ उचित समयपर अति संक्षेपमें किसीसे भी हितकर बात कहनी चाहिये—‘काले हितं मितं ब्रूयात्।’ मनुष्यको करुणार्द्र, कोमल, सुशील तथा संशयरहित होना चाहिये तथा किसीपर अत्यन्त विश्वास भी नहीं करना चाहिये। किसीको अपना शत्रु मानना तथा किसीसे शत्रुता करना दोनों अच्छे नहीं हैं।^२ सदैव

सबसे विनम्र व्यवहार करना चाहिये। व्यर्थमें हाथ-पैर हिलाना, लगातार सूर्यकी ओर देखना तथा सिरपर भार ढोना आदि कार्य न करे, अत्यन्त चमकीली वस्तुओंकी ओर देरतक नहीं देखना चाहिये, इससे अन्धत्व आनेका भय होता है। सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय सोना, भोजन तथा स्त्रीगमन आदि करना निषिद्ध है। हानिप्रद पेय नहीं पीना चाहिये। किसी भी कार्यमें अति नहीं करना चाहिये—‘अति सर्वत्र वर्जयेत्’।

बुद्धिमान् व्यक्तिको दूसरोंसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। समस्त प्राणियोंके प्रति दयाभाव तथा सत्पात्रको दान देनेकी भावना रखनी चाहिये। हिंसा, चोरी, पिशुनता, कठोरता, झूठ, दुर्भावना, ईर्ष्या, द्वेष आदि पापोंसे तथा शरीर, मन और वाणीके द्वारा किसी भी प्रकारके पापोंसे बचना चाहिये। अन्यथा व्याधिरूपमें उनका दण्ड भोगना पड़ता है।

संक्षेपमें निष्कर्ष यह है कि जीवनके उत्कर्षके लिये तथा अपने कल्याणके लिये आचारधर्म अर्थात् सदाचारका पालन ही मनुष्यका मुख्य धर्म है—‘आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः’ (विष्णुसहस्रनाम श्लोक १३७)। जिसका अनुशीलनकर व्यक्ति अनेकानेक आपदाओं, रोगों, अभिचारोंसे सुरक्षित रहकर पूर्ण आरोग्य तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सभीको प्राप्त करनेमें सक्षम हो जाता है।

जो व्यक्ति सदैव हितकर आहार-विहारका सेवन करता है, सोच-समझकर कार्य करता है, विषयोंमें आसक्त नहीं होता, जो दानशील, समत्व बुद्धिसे युक्त, सत्य-परायण, क्षमावान्, वृद्धजनोंकी सेवा करनेवाला है, वह नीरोग होता है—

**नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥**

(चरक)

मन, बुद्धि और चित्त जिसका स्थिर है, ऐसा प्रसन्नात्मा व्यक्ति ही स्वस्थ है—

‘प्रसन्नात्मेन्द्रियग्रामो स्थिरधीः स्वस्थमुच्यते।’

ये सभी बातें अथवा विशेषताएँ आचारधर्मके पालनसे ही सम्भव हैं और यही स्वस्थ दैनिक चर्याका आधार है।

१-आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम् ॥

अर्चयेद्देवगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन् । विमुखान्मार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत् ॥

उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ । सम्पद्विपत्त्येकमना हेतवीर्ष्येतकले न तु ॥ (अ० ह० सू० २।२३-२५)

२-न कोञ्चिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्याचिद्रिपुम् ॥ (अ० ह० सू० २।२७)

जीवनचर्या

सामान्यतया मानवके लिये एक प्रश्न है कि जीवन कैसे बिताया जाय। वैसे तो जीवनयापनके लिये प्रकृतिके कुछ नियम हैं, जिनके अनुसार स्वाभाविक रूपमें संसारके सम्पूर्ण प्राणी अपना निर्वाह करते हैं। मनुष्य विचारप्रधान प्राणी है, पशुत्वसे ऊपर उठकर दिव्यत्वकी ओर जाता है, पशुकी अपेक्षा मनुष्यकी यही विशेषता है कि पशु तो अपनी आँखोंके सामने कोई मोहक वस्तु देखकर उसे पानेके लिये दौड़ पड़ता है और उसके प्रलोभनमें फँसकर पीछे होनेवाली ताड़नापर दृष्टि नहीं रखता, उसे तो केवल वर्तमान सुख चाहिये, परंतु मनुष्य किसी आकर्षक वस्तुको देखकर यह जानता है, विचार करता है और फिर यदि वह वस्तु अपने जीवनकी प्रगतिमें सहायक हुई तो उसे जहाँतक हुआ अपनी उन्नतिमें बाधक न हो, स्वीकार करता है और उसका उपयोग करता है। यद्यपि मनुष्यको क्षणिक उपभोग-सुखपर जो कि अत्यन्त तुच्छ है, मुग्ध नहीं होना चाहिये। कारण मनुष्यके लिये आवश्यक है कि वह अपने भविष्यकी अर्थात् जन्मान्तरकी भी चिन्ता करे, केवल मनको प्रिय लगनेवाले विषयोंकी परिधिमें ही सीमित न रहकर अपने शाश्वत कल्याणके लिये प्रयत्नशील रहे। इसीलिये भगवान्ने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु आत्मैव रिपुरात्मनः॥ यदि हम अपना पतन नहीं होने देना चाहते हैं तो हमें अपना उद्धार अपने-आप करना होगा। वस्तुतः हम ही अपने-आपके मित्र और शत्रु हैं। यदि हम अपने कल्याणप्राप्तिके पथपर अर्थात् शास्त्रोक्त कर्तव्योंका क्रियान्वयन करते हैं, हम अपने मित्र हैं और यदि हम उच्छृंखलतापूर्वक अपनी मनमानी करते हैं तो स्वाभाविक रूपसे हम स्वयंके शत्रु हो जाते हैं। कारण उच्छृंखल होकर अधर्मपूर्वक कार्य करनेवाले

व्यक्तिका पतन निश्चित है। उसे अगले जन्ममें पशु-पक्षी, कीट-पतंग एवं तिर्यक् योनि प्राप्त होती है तथा नरक भी भोगना पड़ता है। अतः अत्यन्त सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

जीवनचर्याके अन्तर्गत जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये, इसपर संक्षेपमें यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है—

संस्कार

अपने शास्त्रोंमें संस्कारोंकी आवश्यकता बतायी गयी है, जैसे खानसे सोना, हीरा आदि निकलनेपर उसमें चमक, प्रकाश तथा सौन्दर्यके लिये तपाकर, तराशकर मल हटाना एवं चिकना करना आवश्यक होता है, उसी प्रकार मनुष्यमें मानवीय शक्तिका आधान होनेके लिये उसे सुसंस्कृत होना आवश्यक है और उसे पूर्णतः विधिपूर्वक संस्कारसम्पन्न करना चाहिये। वास्तवमें विधिपूर्वक संस्कार-साधनसे दिव्य ज्ञान उत्पन्न होकर आत्माको परमात्माके रूपमें प्रतिष्ठित करना ही मुख्य संस्कार है, तभी मानवजीवन प्राप्त करनेकी सार्थकता भी है।

संस्कारोंसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, संस्कार मनुष्यको पाप और अज्ञानसे दूर रखकर आचार-विचार और ज्ञान-विज्ञानसे समन्वित करते हैं।

शास्त्रोंमें संस्कारपर बहुत विचार हुआ है तथा विविध संस्कारोंका उल्लेख है, परंतु उनमें मुख्य तथा आवश्यक षोडश संस्कार माने गये हैं। महर्षि व्यासजीद्वारा प्रतिपादित प्रमुख षोडश संस्कार इस प्रकार हैं^१—

१-गर्भाधानसंस्कार—विधिपूर्वक संस्कारसे युक्त गर्भाधानसे अच्छी और सुयोग्य सन्तान उत्पन्न होती है। इस संस्कारसे वीर्यसम्बन्धी तथा गर्भसम्बन्धी पापका नाश होता है। दोषका मार्जन तथा क्षेत्रका संस्कार होता है। यही गर्भाधानसंस्कारका फल है।^२

१-गर्भाधानं पुसवनं सीमन्तो जातकर्म च। नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रियाः॥

कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः। केशान्तः स्नानमुद्राहो विवाहाग्निपरिग्रहः॥

त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडशः स्मृताः। (व्यासस्मृति १।१३—१५)

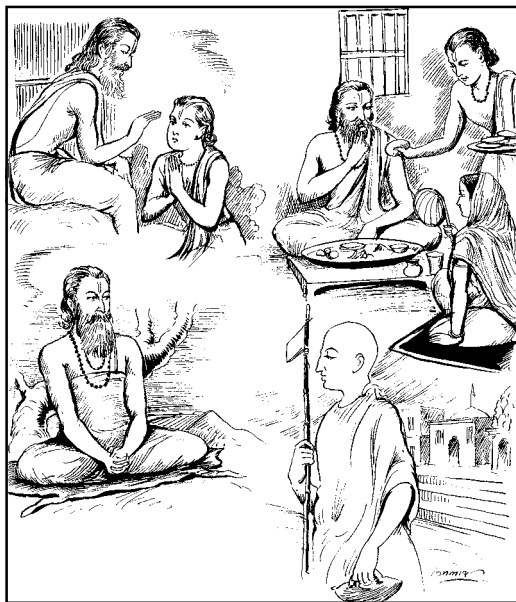
२-निषेकाद् बैजिकं चैनो गार्धिकं चापमृज्यते। क्षेत्रसंस्कारसिद्धिश्च गर्भाधानफलं स्मृतम्॥ (स्मृतिसंग्रह)

१-आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च सिद्धिव्यवहृतेस्तथा । नामकर्मफलं त्वेतत् समुद्दिष्टं मनीषिभिः ॥ (स्मृतिसंग्रह)

—साथ ही परधर्मको भयावह भी बताया है। यह ठीक है; क्योंकि सब वर्णोंके स्वधर्मपालनसे ही सामाजिक शक्ति और सामंजस्य रहता है और तभी समाज-धर्मकी रक्षा एवं उन्नति होती है। स्वधर्मका त्याग और परधर्मका ग्रहण व्यक्ति और समाज दोनोंके लिये ही हानिकारक है। अतः व्यवस्थित वर्णव्यवस्थाको मर्यादित रहने देना, उनका संरक्षण करना, तदनुसार चलना सबके लिये सर्वथा कल्याणकारक सिद्ध होगा।

आश्रमव्यवस्था

वर्णव्यवस्थाकी भाँति आश्रमव्यवस्था भी भारतीय संस्कृति एवं हिन्दुधर्मका एक प्रमुख अंग है। ब्रह्मचर्य,



गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास—इन चार आश्रमोंमें प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्यकर्म उसके वर्णके साथ-साथ आश्रमपर भी निर्भर करता है।

ब्रह्मचर्याश्रम—प्रारम्भके २५ वर्ष ब्रह्मचर्य-आश्रमके अन्तर्गत माने गये हैं। प्राचीनकालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-बालक ५ से २५ वर्षकी अवस्थातक गुरुगृहमें ब्रह्मचर्यका पालन करते थे और इसके नियमानुसार रहते थे। शूद्र बालक भी अपने अधिकारानुसार इस उच्च आदर्शका अनुकरण करते थे। परनारीका स्पर्श तो क्या उनके प्रति दृष्टिपात करना यहाँतक कि उनका चिन्तन भी अपराध था। २५ वर्षकी अवस्था प्राप्त होनेपर समावर्तन-संस्कारके बाद पाणिग्रहण-संस्कारके द्वारा वे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते थे।

गृहस्थाश्रम — आश्रमव्यवस्थामें गृहस्थाश्रमको एक महत्त्वपूर्ण आश्रम माना गया है। यह सभी आश्रमोंका आधार है। सम्पूर्ण जीवनकी जिम्मेदारियोंका निर्वाह इस आश्रममें ही होता है। युवावस्था प्राप्त होनेपर व्यक्तिमें एक विशेष शक्तिका संचार होना स्वाभाविक है। पचास वर्षकी अवस्थातक शास्त्रोंने उसे अधिकार दिया कि वह पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये वंशधरोंके निमित्त सन्तान उत्पन्न कर तथा जायिकपजन

करता हुआ अपने परिवारका पालन-पोषण करे। समाज, देश और राष्ट्रकी सेवा करे। गृहस्थाश्रमके अनेक कर्तव्योंके वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होते हैं।

वानप्रस्थाश्रम—पचास वर्षकी अवस्थातक प्रायः व्यक्तिका मस्तिष्क परिपक्व हो जाता है। इसके बाद अवस्था प्रायः ढलने लगती है। उसकी सन्तान भी तबतक युवावस्थाको प्राप्त हो जाती है। पारलौकिक चिन्तन तथा भगवदाराधनकी ओर उसकी प्रवृत्तियाँ विशेषरूपसे उन्मुख होने लगती हैं। इसलिये उसमें गृहस्थ जीवनकी जिम्मेदारियोंसे मुक्त होनेकी भावना जाग्रत् होना स्वाभाविक है। अतः शास्त्रकारोंने पचास वर्षकी अवस्थासे ७५ वर्षकी अवस्थाको वानप्रस्थ-आश्रमकी व्यवस्था दी। इस आश्रममें गृहस्थाश्रमके सुखोंका त्याग करता हुआ व्यक्ति निवृत्तिमार्गकी ओर अग्रसर होता है और मुख्य रूपसे वनमें, एकान्तमें अथवा तीर्थस्थलोंमें निवास करता हुआ निष्काम कर्म, भगवच्चिन्तन, आराधन एवं तपोमय जीवन व्यतीत करता है। तीर्थयात्रा, व्रत, व्रतोद्यापन, परोपकार, समाज-सेवा तथा अन्य सभी पारमार्थिक कार्य इस आश्रममें सम्पन्न किये जा सकते हैं।

संन्यासाश्रम—जीवनका अन्तिम आश्रम है—संन्यास-आश्रम। सभी प्रकारके दायित्वोंसे संन्यास लेनेका विधान इस आश्रममें है। जीवन-निर्वाहमात्रके लिये जो कर्म करना आवश्यक हो, उसके अतिरिक्त सभी कर्मोंसे वह संन्यास ले लेता है तथा ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ की भावनासे ब्रह्मचिन्तनमें ही अपना समय व्यतीत करता है।

वर्णाश्रमधर्म पुनर्जन्म और कर्मवादके सिद्धान्तपर अवलम्बित है। वर्णाश्रमधर्मका अन्तिम लक्ष्य है शिवत्वकी प्राप्ति। जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना तथा जन्म-जन्मान्तरके चक्रसे उद्धार पाना मनुष्य-जीवनका परम और चरम लक्ष्य है। वर्णाश्रम इसी साधनाका पथ दिखलाता है।

व्रतोपवास

मनुष्योंके कल्याणके लिये यज्ञ, तपस्या, तीर्थसेवन, दान आदि अनेक साधन बताये गये हैं, उनमें एक साधन व्रतोपवास भी है, इसकी बड़ी महिमा है। अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये व्रतोपवास आवश्यक है। इससे बुद्धि, विचार और ज्ञानतत्त्व विकसित होते हैं। शरीरके अन्तःस्थलमें परमात्मिक

सफलताके सोपान

प्रति भक्ति-श्रद्धा और तन्मयताका संचार होता है। पारमार्थिक लाभके साथ-साथ व्रतोपवाससे भौतिक लाभ भी होते हैं। व्यापार, व्यवसाय, कला-कौशल, शास्त्रानुसन्धान और उत्साहपूर्वक व्यवहार-कुशलताका सफल सम्पादन किये जानेमें मन निगृहीत रहता है, जिससे सुखमय दीर्घ जीवनमें आरोग्य साधनोंका स्वतः संचय हो जाता है।

यद्यपि रोग भी पाप हैं और ऐसे पाप व्रतोंसे दूर होते ही हैं। तथापि कायिक, वाचिक, मानसिक और सांसारिक पाप, उपपाप, महापापादि भी व्रतोपवाससे दूर होते हैं। उनके समूल नाशका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि व्रतारम्भके पूर्व पापयुक्त प्राणियोंका मुख हतप्रभ रहता है और व्रतकी समाप्ति होते ही वह सूर्योदयके कमलकी भाँति खिल उठता है। पुण्यप्राप्तिके लिये किसी पुण्यतिथिमें उपवास करने या किसी उपवासके कर्मानुष्ठानद्वारा पुण्य-संचय करनेके संकल्पको व्रत कहा जाता है। यम-नियम और शम-दम आदिका पालन, भोजन आदिका परित्याग अथवा जल-फल आदिपर रहना तथा समस्त भोगोंका त्याग करना—ये सब व्रतके अन्तर्गत समाहित होते हैं। शास्त्रोक्त नियम ही व्रत कहे जाते हैं। व्रतीको शारीरिक सन्ताप सहन करना पड़ता है, इसीलिये इसे तप भी कहा जाता है। इन्द्रियनिग्रहको दम और मनोनिग्रहको शम कहा गया है। व्रतमें इन्द्रियोंका नियमन (संयम) करना होता है। इसलिये इसे नियम भी कहते हैं। इसके पालनसे देवगण व्रतीपर प्रसन्न होकर उसे भोग तथा मोक्ष—सब कुछ प्रदान कर देते हैं। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, हवन, संतोष और चोरीका अभाव—इन नियमोंका पालन प्रायः सभी व्रतोंमें आवश्यक माना गया है—

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

देवपूजाग्निहरणं सन्तोषोऽस्तेयमेव च॥

सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः।

(अग्निपु० १७५। १०-११)

इन सभी व्रतोपवासोंमें व्यक्तिको सात्त्विकताका आश्रयणकर अपने त्रिविध पापोंको दूर करनेके लिये, अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये विशेषतः भगवत्प्राप्तिके लिये ही इनका अनुष्ठान करना चाहिये। इनके अनुष्ठानसे परम कल्याण होता है, बुद्धि निर्मल हो जाती है, विचारोंमें सत्त्वगुणका उद्रेक होता है, विवेक शक्ति प्राप्त होती है, सत्-असत्का निर्णय स्वतः होने लगता है और अन्तमें

सन्मार्गमें प्रवृत्त होते हुए कर्ता या अनुष्ठाता लौकिक तथा पारलौकिक सुखोंको प्राप्त करता है। इसीलिये व्रतोपवासकी महिमा बताते हुए कहा गया है कि व्रतोपवास के अनुष्ठानसे पापोंका प्रशमन होता है। ईप्सित फलोंकी प्राप्ति होती है, देवताओंका आश्रयण प्राप्त होता है। व्रतीपर देवता अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और वे अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। जो व्यक्ति निर्दिष्ट विधिसे व्रतोपवासका अनुष्ठान करते हैं, वे संसारमें सभी दुःखोंसे रहित होते हैं और स्वर्गलोकमें ऐश्वर्यका भोग करते हैं तथा देवताओंद्वारा सम्मान प्राप्त करते हैं।

दान-प्रकरण

मनुष्यके जीवनमें दानका अत्यधिक महत्त्व बतलाया गया है। यह एक प्रकारका नित्यकर्म है। मनुष्यको प्रतिदिन कुछ दान अवश्य करना चाहिये। ‘श्रद्धया देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्।’ दान चाहे श्रद्धासे दे अथवा लज्जासे दे या भयसे दे, परंतु दान किसी प्रकार अवश्य देना चाहिये। मानवजातिके लिये दान परम आवश्यक है। दानके बिना मानवकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। अतः मानवको अपने अभ्युदयके लिये दान अवश्य करना चाहिये।

अपने शास्त्रोंमें कहा है—‘विभवो दानशक्तिश्च महतां तपसां फलम्’ विभव और दान देनेकी सामर्थ्य अर्थात् मानसिक उदारता—ये दोनों महान् तपके फल हैं। विभव होना तो सामान्य बात है, यह कहीं भी हो सकता है, पर उस विभवको दूसरोंके लिये देना मनकी उदारतापर ही निर्भर करता है, जो जन्म-जन्मान्तरके पुण्यपुंजसे प्राप्त होती है।

शास्त्रोंमें दानके लिये स्थान, काल और पात्रका विशद विचार किया गया है। दान किसी शुभ स्थानपर अर्थात् तीर्थ आदिमें, शुभकालमें तथा अच्छे मुहूर्तमें सत्पात्रको देना चाहिये। यद्यपि यह विचार सर्वथा उचित है, परंतु अनवसरमें भी यदि अवसर प्राप्त हो जाय तो भी दानका अपना एक वैशिष्ट्य है—जिस पात्रको आवश्यकता है, जिस स्थानपर आवश्यकता है और जिस कालमें आवश्यकता है, उसी क्षण दान देनेका एक अपना विशेष महत्त्व है। विशेष आपत्तिकालमें तत्क्षण पीड़ितसमुदायको अन्न-आवास, भूमि आदिकी जो सहायता प्रदान की जाती

* अन्यायोपार्जितैव द्रव्येण सुकृतं कृतम् । न कीर्तिरिह लोके च परलोके च तत्फलम् ॥ (देवीभा० ३।१२।८)

मनुष्य निर्मल नहीं होता, मनके मलको निकाल देनेपर ही भीतरसे सुनिर्मल होता है। जलजन्तु जलमें ही पैदा होते हैं और जलमें ही मरते हैं, परंतु वे स्वर्गमें नहीं जाते; क्योंकि उनके मनका मल नहीं धुलता। विषयोंमें अत्यन्त राग ही मनका मल है और विषयोंसे वैराग्य ही निर्मलता है। चित्त अन्तरकी वस्तु है, उसके दूषित रहनेपर केवल तीर्थ-स्नानसे शुद्धि नहीं होती। जैसे सुराभाण्डको चाहे सौ बार जलसे धोया जाय, वह अपवित्र ही है, वैसे ही जबतक मनका भाव शुद्ध नहीं है, तबतक उसके लिये दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन और स्वाध्याय—सभी अतीर्थ हैं। जिसकी इन्द्रियाँ संयममें हैं, वह मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्करादि तीर्थ विद्यमान हैं। ध्यानसे विशुद्ध हुए, राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाले ज्ञानजलमें जो स्नान करता है, वही परमगतिको प्राप्त करता है।^१

तीर्थका फल किसे मिलता है और किसे नहीं मिलता ?

जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयमित हैं अर्थात् जिसके हाथ सेवामें लगे हैं, पैर तीर्थादि भगवत्-स्थानोंमें जाते हैं और मन भगवान्‌के चिन्तनमें संलग्न है, जिसे अध्यात्मविद्या प्राप्त है, जो धर्मपालनके लिये कष्ट सहता है, जिसकी भगवान्‌के कृपापात्रके रूपमें कीर्ति है,

वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।^२

जो प्रतिग्रह नहीं लेता, जो अनुकूल या प्रतिकूल—
जो कुछ भी मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहता है तथा
जिसमें अहंकारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थके फलको
प्राप्त होता है।^३

जो पाखण्ड नहीं करता, नये-नये कामोंको आरम्भ नहीं करता, थोड़ा आहार करता है, इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर चुका है, सब प्रकारकी आसक्तियोंसे छूटा हुआ है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।^४

जिसमें क्रोध नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलता है, व्रतपालनमें दृढ़ है और सब प्राणियोंको अपने आत्माके समान अनुभव करता है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।^५

जो तीर्थोंका सेवन करनेवाला धैर्यवान्, श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित्त है, वह पहलेका पापाचारी हो तो भी शुद्ध हो जाता है, फिर जो शुद्ध कर्म करनेवाला है, उसकी तो बात ही क्या है? ^६

जो अश्रद्धालु है, पापात्मा (पापका पुतला—पापमें गौरवबुद्धि रखनेवाला), नास्तिक, संशयात्मा और केवल तर्कमें ही डूबा रहता है—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थके फलको प्राप्त नहीं करते।^{१०} (स्कन्दपुराण)

१-शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे । येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम् ॥
सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः । सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च ॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते । ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् । तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिमनसः परा ॥
न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते । स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः ॥
यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः । सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः ॥
न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः । मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तः सुनिर्मलः ॥
जायन्ते च प्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः । न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमलाः ॥
विषयेष्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते । तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम् ॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान् शुद्ध्यति । शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचिः ॥
दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतं तथा । सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः ॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः । तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥
ध्यानपते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे । यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥ (स्कन्दप०, काशी० ६ । २९—४१)

२-यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥

३-प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित् । अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥

४-अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः । विमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥

५-अक्रोधनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढव्रतः । आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥

६-तीर्थान्यनसुरन् धीरः श्रद्धधानः समाहितः। कृतपापो, विशद्ध्येत किं पुनः शुद्धकर्मकृत ॥

Induism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH

३-तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना संचरन्ति ये । सर्वद्वन्द्वसहा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

गोसेवाका प्रत्यक्ष लाभ है, इससे भौतिक कामनाओंकी पूर्ति होती है। यह अनुभव करनेकी आवश्यकता है। इसके साथ ही परलोकमें शाश्वत सुख प्राप्त होता है। अपने शास्त्र तो कहते हैं—गायमें सभी देवी-देवताओंका निवास है। केवल गायकी सेवा-पूजासे सम्पूर्ण देवी-देवताओंकी

६-धन कमानेमें छल-कपट, चोरी, असत्य और बेईमानीका त्याग कर देना चाहिये। अपनी कमाईके धनमें

३-एवं विधानतः श्राद्धं कुर्यात् स्वविभवोचितम् । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः ॥ (ब्रह्मपुराण)

स्त्रियाँ ही जाती हों, उधर नहीं जाना चाहिये।

२३-भूलसे तुम्हारा पैर या धक्का किसीको लग जाय तो उससे क्षमा माँगनी चाहिये।

२४-कोई आदमी रास्ता भूल जाय तो उसे ठीक

रास्तेपर डाल देना चाहिये, चाहे ऐसा करनेमें स्वयंको कष्ट ही क्यों न हो।

२५-दूसरोंकी सेवा इस भावसे नहीं करनी चाहिये कि उसके बदलेमें कुछ इनाम मिलेगा, सेवा जब निष्कामभावसे की जायगी, तभी सेवाका सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकेगा।

२६-भगवत्प्रार्थनाके समय आँखें बन्द रखकर मनको

स्थिर रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये और उस समय भगवान्‌के चरणोंमें बैठा हूँ, ऐसी भावना अवश्य होनी चाहिये।

२७-किसी स्थानमें जायँ, जहाँ हमारा आदर-सत्कार

हो और हमारे साथ कोई मित्र या अतिथि हो तो हमें उसे भूल न जाना चाहिये, प्रत्युत उसे भी अपने आदर-सत्कारमें सम्मिलित कर लेना चाहिये।

अन्तमें हम अपने पाठकोंसे यह निवेदन करते हैं—अनादि अपौरुषेय वेदोंद्वारा प्रतिपादित विधि-निषेधात्मक व्यवस्था सर्वज्ञ, समदर्शी, सर्वहितैषी, मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके द्वारा धर्मशास्त्रोंमें की गयी है; जिसमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, लौकिक और पारलौकिक—प्रत्येक समस्यापर गम्भीर विचार हुआ है।

ऋषि-महर्षियोंकी इस बहुमुखी, दूरदर्शी, वेदानुसारिणी, सर्वहितकारिणी विचारशैलीको हृदयंगम करते हुए अध्ययन करनेवाले पाठकोंके हृदयमें ऋषियोंके प्रति कृतज्ञताका सद्भाव उदय होना स्वाभाविक है और उनके प्रति अपने अज्ञानसे कल्पित कठोरता, पक्षपात आदि असद्भावका अभाव भी होना ही चाहिये।

भगवदाज्ञाके रूपमें शास्त्रोक्त जीवनचर्याका सर्वसाधारण यथामति अपने जीवनमें उपयोगकर भगवत्कृपासे एक एवं पारलौकिक—दोनों रूपोंमें अधिक-से-अधिक सफलता प्राप्त करेंगे—यह हमारा विश्वास है।

भगवदाज्ञाके रूपमें शास्त्रोक्त जीवनचर्याका सर्वसाधारण जन यथामति अपने जीवनमें उपयोगकर भगवत्कृपासे लौकिक एवं पारलौकिक—दोनों रूपोंमें अधिक-से-अधिक सफलता प्राप्त करेंगे—यह हमारा विश्वास है।

अधिक सफलता प्राप्त करेंगे—यह हमारा विश्वास है।

२०-जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है, भोग नहीं—इस निश्चयसे कभी डिगना नहीं चाहिये और सारे काम इसी लक्ष्यकी साधनाके लिये करने चाहिये।

२१-किसीके घरमें जिधर स्त्रियाँ रहती हों (जनानेमें) नहीं जाना चाहिये। अपने घरमें भी स्त्रियोंको किसी प्रकारसे सूचना देकर जाना चाहिये।

२२-जिस स्थानपर स्त्रियाँ नहाती हों या जिस रास्तेसे

भगवान् श्रीउमामहेश्वरका जीवन-दर्शन

नमः शम्भवाय च मयाभवाय च नमः शङ्कराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥



कल्याण एव आनन्दके मूल स्रोत भगवान् शिवको नमस्कार है। कल्याणका विस्तार करनेवाले तथा सुखका विस्तार करनेवाले भगवान् शिवको नमस्कार है। मंगल-स्वरूप और मंगलमयताकी सीमा भगवान् शिवको नमस्कार है।

साम्बसदाशिव भगवान् शिव और उनकी नाम
समस्त मंगलोंका मूल एवं समस्त अमंगलोंका उन्मूलक
है। वे दिग्वसन होते हुए भी भक्तोंको अतुल ऐश्वर्य
प्रदान करनेवाले, श्मशानवासी कहे जानेपर भी
त्रैलोक्याधिपति, अनन्त राशियोंके अधिपति होते हुए भी
भस्मविभूषण, योगिराजाधिराज होते हुए भी अर्धनारीश्वर,
सदा कान्तासे समन्वित होते हुए भी मदनजित्, अज
होते हुए भी अनेक रूपोंमें आविर्भूत, गुणहीन होते हुए
भी गुणाध्यक्ष, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त तथा सबके
कारण होते हुए भी अकारण हैं। जहाँ वे द्वन्द्वोंकी
प्रतिमूर्ति हैं, वहीं वे द्वन्द्वातीत हैं। एक ओर वे सभी
कल्याणगुणगणोंके आकर हैं तो दूसरी ओर सभी गुणोंसे

अतात—गुणातात है। सभी रूप उन्हाके ह, किंतु वे अरूप हैं, सभी नाम उन्हींके हैं, किंतु वे अनाम हैं। भोगमें योगकी प्रतिष्ठा देखनी हो या योगमें भोगका समन्वय देखना हो, अद्वैतमें द्वैत देखना हो या द्वैतमें अद्वैत, आसक्तिमें अनासक्ति देखनी हो या अनासक्तिमें आसक्ति, भेदमें अभेद देखना हो या अभेदमें भेद, मूर्तमें अमूर्त देखना हो या अमूर्तमें मूर्त, सर्वश्रेष्ठ गृहस्थकी चर्या देखनी हो या मुमुक्षुकी भैक्ष्यचर्या —सबका अद्भुत और विलक्षण समन्वय भगवान् उमामहेश्वरकी जीवनचर्यामें विद्यमान है। वे सभीके आदर्श हैं। उनके उदात्त चरित्र लोकके लिये महान् कल्याणकारी हैं। यदि हमें अपनी जीवनचर्या और दैनिक चर्या मंगलमय बनानी हो तो भगवान् भूतभावनके जीवनदर्शनका अवलोकन करना चाहिये। उन्हें अपना आदर्श मानकर अपनी रहनी-करनी बनानी चाहिये तथा उनके उपदेशोंको आचरणमें लाना चाहिये।

भगवान् शिव और जगज्जननी माता पार्वतीका सर्वथा अभेद है, किंतु लीलाका विस्तार करनेके लिये एवं कल्याणसम्पदाका वितरण करनेके लिये तथा अपने आचरणोंसे लोकशिक्षा देनेके लिये वे शिव और शक्तिरूपमें प्रकट हुए हैं। प्रत्येक गृहस्थको अपने दाम्पत्य-जीवनकी सफलताके लिये भगवान् शिव एवं माता पार्वतीके दृष्टान्तको अपने सामने रखना चाहिये। सीतामाताने तो भगवान् श्रीरामकी प्राप्तिके लिये गौरीपूजन किया था और अखण्ड सौभाग्यका वर प्राप्त किया था। भगवान् शिवकी अन्तरंगा शक्ति हिमालयपुत्री पार्वतीने जब भगवान् शिवको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये अखण्ड तप प्रारम्भ किया तो भगवान् शिव लीलासे ब्राह्मणबटुका रूप बनाकर उपस्थित हुए और बोले—भला, देखो तो सही शिवका रूप कितना कुरूप है, आँखें बन्दर-जैसी हैं, शरीरमें चिताभस्म और साँप लपेटे हुए हैं; उनके कुल, खानदान, माता-पिता,

लिये विस्तारसे बातें बतलायीं, उनका कुछ अंश बहुत उपयोगी होनेसे यहाँ प्रस्तुत है—



कहलाये। यह संसारपर उनका महान् अनुग्रह तथा मनुष्योंके लिये सीखनेके लिये महान् शिक्षा है।

दानी बनो, उदार बनो—देवोंमें बहुत-से दानी हैं, किंतु भगवान् शिवकी तो महिमा ही अपार है, गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—भगवान् शंकरके समान दानी और उदार कोई नहीं है, उन्हें तो बस देना ही भाता है और याचक उन्हें बहुत प्रिय हैं, वे दीनदयाल कहलाते हैं—

दानी कहूँ संकर-सम नहीं।

दीनदयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं ॥

(विनय-पत्रिका)

अतः उन्हें छोड़कर किससे याचना की जाय—‘को
जाँचिये संभू तजि आन।’

भगवान् अपने इस शीलस्वभावसे संसारके लोगोंको यह शिक्षा देते हैं कि जिसके पास थोड़ा भी साधन है, धन है, उससे वह दीन-दुःखियों, अनार्थोंकी सेवा करे; परिग्रह, संचय, संग्रहसे सदा दूर रहे। धन-सम्पत्तिसे अभिमान होता है, अतः उस धनको सबमें बाँट दे। दुःखमें लोगोंकी सहायता करे और अपनी जीवनचर्याको उदार बनानेकी चेष्टा करे।

जीवनचर्या-सम्बन्धी उपदेश

एक बार माता पार्वतीने भगवान् शिवसे जीवनमें
पालनीय आचारके सम्बन्धमें निवेदनपूर्वक जिज्ञासा की।
Hinduism Discard Server <https://dsc.gs/g/>
इसके उत्तरमें देवी पार्वतीकी जीवनकी सफलता बतानी

गृहस्थका धर्म तथा गृहस्थाश्रमकी श्रेष्ठता—

गृहस्थका परम धर्म है किसी जीवकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियोंपर दया करना, मन और इन्द्रियोंपर काबू रखना तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान देना। गृहस्थमें पति-पत्नीका स्वभाव एकसमान होना चाहिये। गृहस्थको चाहिये कि वह नित्य पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान करे। जो लोग अपने माता-पिताकी सेवा करते हैं, जो नारी पतिकी सेवा करती है— उसपर सब देवता, ऋषि-महर्षि प्रसन्न रहते हैं। जो शील और सदाचारसे विनीत है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको काबूमें कर रखा है, जो सरलतापूर्वक व्यवहार करता है और समस्त प्राणियोंका हितैषी है, जिसको अतिथि प्रिय हैं, जो क्षमाशील है, जिसने धर्मपूर्वक धनका उपार्जन किया है—ऐसे गृहस्थके लिये अन्य आश्रमोंकी क्या आवश्यकता है—‘गृहस्थाश्रमपदस्थस्य किमन्यैः कृत्यमाश्रमैः ॥’ (महा०, अनु० अ० १४१)

धर्मका फल किसे प्राप्त होता है?—भगवान् महादेव कहते हैं कि जो हिंसासे सर्वथा विरत रहकर सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देता है, समस्त भूतोंको आत्मभावसे देखता है, सबसे सरलताका व्यवहार करता है, क्षमाशील है, जितेन्द्रिय है, धर्मनिष्ठ है, सन्मार्गपर चलनेवाला है, सच्चरित्र है, उसे धर्मका फल प्राप्त होता है—‘**स वै धर्मेण युज्यते**’ (महा०, अनु० १४२। २७)।

उत्तम लोकोंमें कौन जाते हैं—जीवनचर्यामें शील, सदाचार, सत्य, शौच तथा तप आदिकी महिमाके विषयमें शंकरजी कहते हैं—जो दूसरोंके धनपर ममता नहीं रखते, परायी स्त्रीसे सदा दूर रहते और धर्ममार्गसे प्राप्त अन्नका ही भोजन करते हैं। जो परिहासमें भी झूठ नहीं बोलते, स्वेच्छाचारसे दूर रहते हैं, चुगली नहीं करते, सौम्य वाणी बोलते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं—‘ते नराः स्वर्गगामिनः’ (महा०, अनु० १४४।२५)। जो सबके प्रति मैत्रीभाव रखते हैं, शत्रु तथा मित्र—दोनोंको समानभावसे अपनाते हैं, जो सबके प्रति दयाभाव रखते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं।

दैनन्दिनजीवनमें धर्मपालनकी महत्ता—अनीति,

श्राद्ध-पितृकर्म अवश्यकरणीय है—भगवान् शंकर कहते हैं—हे देवि! जैसे भूमिपर रहनेवाले सभी प्राणी वर्षाकी बाट जोहते रहते हैं, उसी प्रकार पितृलोकमें रहनेवाले पितर श्राद्धकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। हे शुभे! पितर सभी लोकोंमें पूजनीय होते हैं, वे देवताओंके भी देवता हैं, उनका स्वरूप शुद्ध, निर्मल एवं पवित्र है, वे दक्षिण दिशामें निवास करते हैं—

गृहस्थजनों, विरक्तों तथा साधुओंकी जीवनचर्या कैसी हो ?

[संत श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके सद्गुपदेश]

परम विरक्त तथा ब्रह्मनिष्ठ सन्त पूज्य उड़ियाबाबाजी महाराज अपने सत्संगमें, उपदेशोंमें सन्त-महात्माओं तथा गृहस्थजनोंको अपना एक-एक क्षण भगवद्भक्ति तथा सत्कर्मोंमें लगानेकी प्रेरणा दिया करते थे। वे कहा करते थे कि मानव-योनि अनेक जन्मोंके संचित पुण्योंसे प्राप्त होती है। अतः मानवको एक-एक पल, एक-एक क्षण शास्त्रानुसार व्यतीत करके अपने जीवनको सार्थक करना चाहिये।

देशके शीर्षस्थ सन्त-महात्मा समय-समयपर पूज्य बाबाका सत्संग करने, उनका मार्गदर्शन प्राप्त करने कर्णवास (बुलन्दशहर)-में श्रीगंगाजीके किनारे स्थित उनकी कुटियामें पधारा करते थे। वे सन्तों अथवा गृहस्थजनोंके बीच प्रवचन करते थे और उनकी जिज्ञासाओंका समाधान करते थे।

पूज्य श्रीउड़िया बाबाजी महाराज प्रायः कहा करते थे कि जो अभ्यासमय जीवन बिताता है, जिसकी जीवनचर्या शास्त्रोक्त है, उसका लोक-परलोकमें कल्याण होता है।

एक दिन उन्होंने प्रवचनमें कहा—

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।

परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

(गीता ८।८)

जिसने अभ्यासमय जीवन बिताया, उसीने परम दिव्य पुरुषकी प्राप्ति की है।

अतः सन्त-महात्मा हो या गृहस्थ सभीको आदर्श जीवन-यापन करनेका अभ्यास करना चाहिये।

श्रद्धा, भक्ति, नम्रता, उत्साह, धैर्य, मिताहार, आचार, शरीर, वस्त्र और गृह आदिकी पवित्रता, इन्द्रियसंयम और सदाचरणका सेवन तथा कुसंगका सर्वथा परित्याग—ये सब सत्त्वगुणकी वृद्धि करनेवाले हैं। मानव-जीवन, जीवनका प्रत्येक पल भगवान्की सम्पत्ति है, ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिये। भगवान्की सम्पत्तिका अपव्यय करना

महापाप है ।

भगवच्चिन्तनमें समयका सदुपयोग करना चाहिये। सर्वथा नियम-निष्ठामें तत्पर रहना चाहिये। भगवान्को सर्वव्यापक समझकर ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, शत्रुता और कुत्सित भावका त्याग करना चाहिये। ‘भगवान् सर्वदा मेरे समीप हैं’ ऐसा दृढ़ विश्वास रखकर अनावश्यक तथा निन्दित कर्मोंसे बचना चाहिये। सरलता तथा श्रद्धा भक्तिमार्गका सोपान हैं तथा सन्देह और कपट अवनतिका चिह्न है। प्रतिदिन सबेरे विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये—

‘हे परमपिता ! मेरी वाणी आपके गुण-कीर्तनमें, कर्ण महिमा-श्रवणमें, हाथ युगल चरण-सेवामें, चित्त चरण-चिन्तनमें, मस्तक प्रणाममें और दृष्टि आपके स्वरूपभूत साधुओंके दर्शनोंमें नियुक्त रहे।’

भगवान्का नित्य स्मरण ही ज्ञान, भक्ति और
वैराग्यका उपाय है।

मौन, चेष्टाहीनता और प्राणायामसे शरीर, मन और वाणी वशीभूत होते हैं। गार्हस्थ्य सम्बन्धी कार्य यथासमय नियमानुकूल सम्पादन करनेसे भजनमें सहायता मिलती है। जबतक क्रोध, द्वेष, कपट, स्वार्थपरता एवं अभिमान हमारे हृदयमें विद्यमान रहेगा, तबतक कठोर तप करनेपर भी भक्तिलाभ करना दुष्कर है।

सद्भाषण, सद्बिचार, सद्भावना और न्यायनिष्ठाका परित्यागकर बाह्य आडम्बरसे कोई भी धर्मात्मा नहीं बन सकता ।

रसास्वादके लोभसे भोजन करनेसे तमोगुण बढ़ता है ।
रसनेन्द्रिय वशीभूत न होनेसे अन्य इन्द्रियाँ वशीभूत नहीं
होतीं ।

सन्ध्या समय भोजन नहीं करना चाहिये। भोजनके समय बोलना नहीं चाहिये। भोजनसे पहले हाथ-पैर धोना चाहिये। पवित्र आसनपर बैठकर उत्तर अथवा पूर्वमुख होकर भगवानको भोग लगाकर भोजन करना चाहिये।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

भोजनमें कोई भी तामसिक वस्तु जैसे—प्याज, लहसुन आदि नहीं होनी चाहिये।

सत्य, दया, संयम, शिष्टाचार, सदाचार—ये गुण भगवान्की भक्तिमें सहायक होते हैं। हास-परिहास करना, मनोरंजनके नामपर तमाशा तथा सिनेमा देखना, अश्लील उपन्यास पढ़ना, अन्यायसे दूसरोंका धन हरण करना—अभक्तोंका लक्षण है। समय-समयपर विधिवत् श्रद्धापूर्वक तीर्थ-भ्रमण करनेसे चित्त-शुद्धि होती है। तीर्थोंमें रहकर परनिन्दा करनेसे, कुभावनाके उदय होनेसे संचित पुण्य क्षीण होते हैं, पाप-संग्रह होता है।

काम, क्रोध, लोभपर नियन्त्रण करनेका अभ्यास करना चाहिये। क्रोधादि मनकी तरंगें हैं। मन शान्त हो जानेसे हृदयमें भक्ति-भावना बलवती होती है।

भजन, भाजन और निद्रा प्रतिदिन नियत समयमें होना चाहिये। आलस्य सबसे अधिक विघ्नकारक है। आलस्यसे प्रतिदिनकी जीवनचर्यामें विघ्न पड़ता है। आलस्यसे शरीर और मन—दोनों ही दुर्बल होते हैं।

समय अमूल्य तथा दुर्लभ होता है। समय व्यर्थ कदापि नहीं बिताना चाहिये। जिस समय कोई काम न हो, उस समय जप, मानस-पूजा अथवा सद्ग्रन्थोंका पाठ करना चाहिये। भगवान् तथा भक्तोंका जीवन-चरित्र पढ़ना चाहिये। निद्रा, घृणा, द्वेष और अभिमान जीवके लिये बन्धनकी शृंखला है।

जो परमात्माके दर्शन करना चाहे, उसे शास्त्रानुसार जीवन बिताना चाहिये। गो-ब्राह्मणों तथा साधु-सन्तोंके प्रति श्रद्धा-भावना रखनी चाहिये। कामिनी और कांचनमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। जो सांसारिक सुख-सुविधाओंमें मन लगाये रखते हैं—वे न मनकी शान्ति पा सकते हैं और न भगवान्की कृपाके अधिकारी बन पाते हैं। जगत्का कोई पदार्थ नित्य नहीं है। धन, विद्या, बुद्धि, गुण, गौरव आदि सभी मृत्युके साथ धूलमें मिल जाते हैं। अपने जीवनमें सांसारिक वस्तुओंको महत्त्व नहीं देना चाहिये। भगवान्का भजन, असहायोंकी सेवा-सहायता करनेवाला तथा शास्त्रानुसार सरल सात्त्विक जीवन जीनेवाला ही अपना मानव-जीवन सफल कर पाता है।

नशा—पतनका कारण

शराब, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, भाँग आदि नशीली वस्तुएँ भजन तथा सदाचारमें सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। गृहस्थ ही नहीं साधुओंको भी नशेकी लत पड़ जाती है। कुछ साधु तम्बाकू आदि पीने लगे हैं, अपने पास पैसे भी रखने लगे हैं। अगर कोई कहता है कि साधु-सन्तोंको नशा नहीं करना चाहिये, धन नहीं रखना चाहिये तो झटसे अपनेको वेदान्ती, ब्रह्मज्ञानी बताने लगते हैं और 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने लगते हैं। यह कितना बुरा है। साधु-सन्त या सद्गृहस्थको यदि सच्चे नशेमें डूबनेकी इच्छा है तो भगवान्‌के नामके नशेमें डूबे। नानकदेवजीने ठीक कहा है—'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।' मांस, मदिरा तथा नशेके सेवनने बड़े-बड़े राजा-शासकोंका पतन कर डाला। साधना तथा भक्तिकी कामना रखनेवालोंको किसी भी तरहका नशा कदापि नहीं करना चाहिये। मानवमात्रको नशेसे सर्वथा बचना चाहिये।

साधु-सन्यासिका जावनचर्या कसा हा ?

पूज्य उड़ियाबाबाजी महाराज प्रायः गंगके पावन तटपर किसी कुटियामें रहकर साधना किया करते थे। उस युगके महान् सन्त स्वामी उग्रानन्दजी महाराज, हीरादासजी महाराज, स्वामी शास्त्रानन्दजी महाराज, पूज्य श्रीहरिबाबाजी महाराज आदि पूज्य बाबाके अनन्य श्रद्धालुजनोंमें थे। सन्त प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीपर उनकी अनूठी कृपा थी। स्वामी करपात्रीजी महाराज प्रायः नरवरमें पढ़ते समय पूज्य बाबाका सत्संग किया करते थे। स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी प्रायः पूज्य बाबाके साथ महीनों-महीनों रहकर सत्संग किया करते थे। पूज्य स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजने एक लेखमें लिखा है कि पूज्य उड़ियाबाबाने विरक्तों-सन्तोंकी जीवनचर्याके विषयमें कहा था—

राटी के सिवा कुछ न मांगे, चाहे मर जाय। जितना हो सके तितिक्षा करे, सहन करे। कोई कितना ही दुःख दे, आनन्दपूर्वक सहे। संसारसे वैराग्य और साधनसे प्रेम करे। किसीको औषध आदि न बताये। कितना भी चमत्कार हो अपने लक्ष्यसे न हटे। कामिनी और कंचनका सम्बन्ध न करे। किसी प्रकारका नशा न करे। व्यर्थ

जब भगवान्‌का कोप होता है, तभी साधुको ये वस्तुएँ मिलती हैं। जिस साधुपर भगवान्‌की कृपा हो तो ये संसारी



सार्ववर्णिक धर्म

(गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥*

(श्रीमद्भा० ११।१७।२१)

छप्पय

सत्य, अहिंसा शुद्ध चित्ततें मनमहँ धारै।
कबहुँ न चोरी करै काम बड़ रिपुकुँ मारै॥
क्रोध लोभतें रहित होहिं प्रिय करहिं सबनिको।
प्राणिमात्रतें प्रेम करै हित सब जीवनि को॥

सुखी होहिं परसुख निरखि, पर संपत्ति लखि नहिं जैं।
स्वयं न प्रिय व्यवहार जो, तिहि औरनि संग नहिं करैं॥

कुछ लोग धर्मको अलग मानते हैं और चरित्र तथा सदाचारको अलग। उनके मतमें उपासनागृहमें जाना, पूजा-पाठ करना, परमात्माकी प्रार्थना करना यह तो धर्म है और सत्य, अहिंसा परोपकारादि सदाचार हैं। इनका मत है सदाचारके लिये धर्मकी धार्मिक क्रियाओंकी कोई आवश्यकता नहीं। धार्मिक भी दुराचारी हो सकता है और अधार्मिक भी सदाचारी हो सकता है। किंतु हमारे यहाँ सदाचार और धर्म दो वस्तु नहीं हैं। सदाचार धर्मका ही एक अंग है। हमारे यहाँ तो चरित्र, सदाचार ये सब धर्मके ही अन्तर्गत हैं, जो सदाचारी नहीं, वह धार्मिक कैसे हो सकता है, धर्मका ढोंग भले ही बना ले। आजीविकाके लिये धार्मिक क्रियाओंका आश्रय भले ही ले ले, पर वह धार्मिक नहीं। जो आचारहीन है, उसे तो वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। इसी प्रकार जो सदाचारी है, वह अधार्मिक बना रहे यह असम्भव है। हमारे यहाँ धर्मकी व्याख्या विस्तृत है। वैयक्तिक धर्म, कौटुम्बिक धर्म, जाति धर्म, वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, देश धर्म तथा सार्ववर्णिक धर्म। सब पृथक्-पृथक् हैं। यह नहीं कि हम ब्राह्मण हैं और दूसरा शूद्र है, तो दोनोंके पृथक्-पृथक् धर्म होनेसे हम कभी मिल ही नहीं सकते। अपने-अपने धर्मोंका पालन करते हुए हम सामाजिक क्षेत्रमें एक होते हैं। कुछ धर्म ऐसे हैं, जो सभी

वर्णोंपर सभी आश्रमोंपर यहाँतक मनुष्यमात्रपर एक से लागू हैं।

सूतजी शौनकादि मुनियोंसे कह रहे हैं—‘मुनियो! जब भगवान् ने सभी वर्णोंके धर्मका निरूपण कर दिया, तब उद्धवजीने उनसे सार्ववर्णिक धर्मके सम्बन्धमें प्रश्न किया।’ उसका उत्तर देते हुए वे कह रहे हैं—‘उद्धव! कुछ धर्म ऐसे हैं, जिनका सभी लोग समान भावसे पालन कर सकते हैं।’ वे ये हैं—

(१) अहिंसा—अहिंसा कहते हैं, तनसे, मनसे और वाणीसे किसीको कष्ट न पहुँचाना। यों संसारमें हिंसाके बिना तो कोई जीवित रह ही नहीं सकता। जीव ही जीवोंका जीवन है। एक जीव दूसरे जीवको खाकर ही जी रहा है। अंडज, जरायुज, स्वेदज और उद्भिज्ज ये चार प्रकारके जीव हैं। एक-दूसरेको खाकर ही सबका जीवन है। स्वेद (पसीना)-से उत्पन्न होनेवाले खटमल, जूँ मनुष्योंका रक्तपान करके ही जीते हैं। अण्डसे उत्पन्न होनेवाले पक्षी एक-दूसरेको खाते हैं। मोर सर्पको खा जाता है। मेढ़क छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ोंको भक्षण कर जाता है। गाय-भैंस घासको खाकर जीती हैं। घासमें जीव है। मनुष्य अन्न-फल खाता है, इनमें भी जीव है। दूध पीता है, दूधमें भी जीव है। माताका रक्त ही सफेद होकर दूध बन जाता है। दूधको जलाइये तो चरबी-जैसी गन्ध आयेगी। ये सब हिंसाएँ स्वाभाविक हैं। जीव इनसे बच नहीं सकता। मनुष्य प्राणी पशु नहीं है, बुद्धिमान् है। उसे जहाँतक हो हिंसासे बचना चाहिये। बिना मांसके निर्वाह होता हो, तो अपने मांसको बढ़ानेके लिये दूसरोंका मांस न खाना चाहिये। कर्तव्यबुद्धिसे धर्मकी रक्षाके लिये किसीको मारना हो यह दूसरी बात है, किंतु यों व्यर्थमें किसीको कभी भी न मारना चाहिये। जब हम जीवन प्रदान नहीं कर सकते तो हमें किसीको मारनेका अधिकार ही क्या है। इसलिये कभी किसीको मारे नहीं। मनसे

* भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी उद्धवजीसे कह रहे हैं—‘उद्धव! अहिंसा, सत्य, अस्तेय, काम, क्रोध और लोभसे रहित होना तथा प्राणियोंकी हितकारी और प्रिय चेष्टाओंमें संलग्न रहना—ये सामान्यतया सभी वर्णोंके धर्म हैं।’

ये सब ऐसे गुण हैं कि इन्हें चाण्डालसे लेकर श्रोत्रियतक समान भावसे कर सकते हैं। ये सब वर्णोंके सामान्य धर्म हैं। यहाँ उन्हें संक्षेपमें कहा है, नहीं तो सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, युक्तायुक्त विचार, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शित्व, सन्त-सेवा, सांसारिक भोगोंसे शनैः-शनैः निवृत्ति, प्रारब्ध-निर्भरता, आत्मचिन्तन, मौन, प्राणियोंको अन्नादि बाँटकर खाना, प्राणिमात्रमें विशेषकर मनुष्योंमें भगवद् भाव रखना, भगवत्-कथा-श्रवण, नामगुण-कीर्तन, स्मरण, सेवा, पूजा, नमस्कार, अपनेको भगवान्का दास मानना, सख्यभाव तथा आत्मसमर्पण करना—ये तीस लक्षणवाला धर्म है। इनका आचरण सभी कर सकते हैं। किसी वर्णका हो, किसी आश्रमका हो, किसी देशका हो, किसी पन्थ, सम्प्रदाय, मत-मतान्तरका व्यक्ति क्यों न हो—इन तीस धर्मोंका पालन करनेसे वह सद्गतिको प्राप्त हो सकता है। मान्यता तो अपनी है। ऐसा आग्रह नहीं है कि इस सम्प्रदायको छोड़कर इसमें जाओगे, तभी उद्धार होगा। आपकी जो मान्यता हो, उसे ही मानो। इन धर्मोंका पालन करो, तुम जहाँ हो वहाँ ही तुम्हें सिद्धि प्राप्त हो जायगी।

मैं किसी सम्प्रदायविशेषका नहीं हूँ, जो मुझे जिस भावसे भजते हैं मैं भी उन्हें उसी भावसे भजता हूँ, जो मुझमें वात्सल्य रखते हैं, मैं भी पिता-माताका भाव रखता हूँ, जो मुझे सखा मानते हैं, मैं उन्हें अपना सखा मानता हूँ, जो मुझे स्वामी मानकर पूजते हैं, मैं भी उनकी सेवा-भावसे सब देख-रेख करता हूँ, उनके छोटे-से-छोटे कामको स्वयं करता हूँ। जो मुझमें पतिभाव रखते हैं, उन्हें मैं अपनी प्राणप्रियाकी भाँति प्यार करता हूँ। उन्हें अपने हृदयका हार बना लेता हूँ; सब समय सोते-जागते, उठते-बैठते उनका स्मरण करता हूँ। मैं भावका भूखा हूँ। यदि भाव नहीं तो उच्च-से-उच्च वर्णका नीच है, यदि भाव है तो चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। सत्य-अहिंसादि धर्मोंका पालन करनेके लिये ही सब विधि-विधान हैं। यह मैंने अत्यन्त संक्षेपमें समस्त वर्णोंके धर्म बताये। [प्रेषक—श्रीश्यामलालजी पाण्डेय]

जीवनका चरम लक्ष्य

(महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगोपीनाथजी कविराज)

मानव-जीवनका वास्तविक लक्ष्य क्या है ? जीवात्मा अनादिकालसे प्रकृतिके प्रवाहमें सवारके समान अणुरूपमें नानाविध शरीर धारण करते हुए कालकी गतिसे बह रहा है। न जाने, किस जगह पहुँचनेपर इस अविरल प्रवाहसे छुटकारा प्राप्त होगा एवं सागर-संगममें पहुँचकर जैसे नदी कृतार्थ होती है, वैसे ही मनुष्यका आत्मा अपनी परम काम्य वस्तुको प्राप्तकर चिरकालके लिये शान्ति प्राप्त करेगा। नाना सम्प्रदायोंमें विविध भावोंद्वारा इस लक्ष्यके निर्धारणके लिये प्रयत्न हुए हैं एवं इन प्रयत्नोंद्वारा दार्शनिक साहित्यमें विविध प्रकारके मतवादोंकी सृष्टि हुई है। विचार करनेपर प्रतीत होगा कि इन सभी सिद्धान्तोंमें कोई भी सिद्धान्त भ्रान्त नहीं है, तो भी यह सत्य है कि चरम सिद्धान्त कभी एकके सिवा दो नहीं होते।

जबतक ज्ञान प्राप्त न हो, तबतक अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती एवं अज्ञानकी निवृत्ति हुए बिना भ्रमका विनाश भी नहीं होता, किंतु इस ज्ञान-प्राप्तिके प्रसंगोंमें ज्ञानोंके भेद भी जान लेना आवश्यक है। जो ज्ञान बुद्धिका धर्म है, उससे हमलोगोंका थोड़ा-बहुत आंशिक रूपमें परिचय है। उसी ज्ञानके प्रभावसे बुद्धिके धर्म अज्ञानकी निवृत्ति होती है। किंतु उस अज्ञानके निवृत्त होनेपर भी मूलमें ऐसा एक अज्ञान रह जाता है, जिसके निवृत्त हुए बिना जीवनका यथार्थ कल्याण आविर्भूत नहीं हो सकता। आकाशमें बादल रहनेपर बादलोंके मध्यमें स्थित सूर्यबिम्ब दिखायी नहीं देता। सूर्यका उदय होनेके बाद आकाशके मेघावृत रहनेपर मेघके हटनेके साथ ही सूर्यका दर्शन होता है एवं उसकी किरण और धूपकी भी प्राप्ति होती है किंतु अर्धरात्रिमें जब आकाशमें सूर्यका प्रकाश नहीं रहता, तब आकाशमें बादलोंके रहनेपर एवं उन बादलोंके हटनेपर सूर्यबिम्ब दृष्टिगोचर होगा, यह कहना सम्भव नहीं। ठीक उसी प्रकार बौद्ध ज्ञानके द्वारा बौद्ध अज्ञानके मिट जानेपर भी हृदयमें अन्धकार रहता ही है, यदि उसके पहले हृदयसे मूल अज्ञानकी निवृत्ति न हुई तो इसीलिये आगमवेत्ता योगी कहते हैं कि बौद्ध अज्ञानकी निवृत्तिका उतना मूल्य नहीं है, जितना कि पौरुष अज्ञानकी निवृत्तिका, अर्थात् जबतक पुरुषके स्वरूपगत अज्ञानकी निवृत्ति न हो

जाय, तबतक वास्तवमें बौद्ध अज्ञानकी निवृत्तिका प्रश्न ही नहीं उठता। आत्माके प्राक्तन (पूर्वजन्मोंके) कर्मोंसे देह-ग्रहण करनेपर उस देहका अवलम्बनकर उसमें एक कृत्रिम अहं-प्रतीतिका उदय होता है; इस अहं-प्रतीतिका आधार है बुद्धि। इस बुद्धिमें जो अज्ञान धर्मरूपसे भासता है, वही बौद्ध अज्ञान है एवं उसमें जो ज्ञानका उदय होता है, वही बौद्ध ज्ञान है। किंतु इसका मूल्य कितना है ? जिस अज्ञानके प्रभावसे आत्मा मायाके अधीन होकर देह ग्रहण करनेके लिये बाध्य होता है, उस अज्ञानकी निवृत्ति न होनेतक आत्माका नैसर्गिक शिवत्वरूप धर्म अभिव्यक्त नहीं हो सकता। उस मूल अज्ञानको पौरुष अज्ञान कहा जा सकता है। इस अज्ञानकी निवृत्तिके लिये जो अत्यन्त आवश्यक उपाय है, वह कर्म नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, यहाँतक कि भक्ति भी नहीं है। इन सबकी उपायरूपमें गणना होनेपर भी ये बुद्धिके व्यापार हैं। बुद्धिके पहले जो हो चुका, उसे दूर करनेकी क्षमता इनमेंसे किसीमें भी नहीं है। इसलिये, जबतक मनुष्यकी आत्मासे वह मूल अज्ञान न हट जाय तबतक मनुष्य-जीवनका परम आदर्श कदापि साक्षात् रूपसे प्राप्त नहीं हो सकता। वह मूल अज्ञान आत्माद्वारा स्वेच्छासे गृहीत आत्मसंकोचके सिवा और कुछ नहीं है। वास्तवमें, शिवरूपी आत्मा सब प्रकारसे संकोचरहित है, उसमें कालका संकोच न होनेसे वह नित्य है, देशका संकोच न होनेसे वह विभु है, क्रियाका संकोच न होनेसे वह सर्वकर्ता है, ज्ञानका संकोच न होनेसे वह सर्वज्ञ है एवं आनन्दका संकोच न होनेसे वह नित्य-तृप्त है। वही आत्माका शिवत्व है, किंतु जब लीलाके बहाने स्वेच्छासे आत्मा अपनेको संकुचित करते हैं और अभिनयके लिये जीवभाव ग्रहण करते हैं, तब उनके स्वाभाविक सभी धर्म संकुचित होनेको बाध्य होते हैं। तब यह परिच्छिन्न शक्तिवाले क्षुद्र आत्मा मायाके अधीन होकर कर्ताका स्वाँग धारण करते हैं, अर्थात् कर्मजगत्में प्रवेश करते हैं एवं कर्म करना और किये हुए कर्मोंका फलभोग करना—इन दो व्यापारोंमें लिप्त होकर एक योनिसे दूसरी योनिमें भिन्न-भिन्न शरीर ग्रहण करते हैं और त्याग करते हैं। उनके संसारचक्रमें परिभ्रमणका यही संक्षिप्त इतिहास है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि आत्मशुद्धिके हेतु सच्चारित्र्यका संग्रह करना अनिवार्य कर्तव्य है। इसे कदापि भूलना नहीं चाहिये। देह-सम्पन्न आत्माकी अभिमान-सामग्रीमें बुद्धि (समझ-शक्ति) एक प्रधान अंग है। ज्ञान और अज्ञान दोनों ही उसके धर्म हैं। बौद्ध ज्ञानसे बौद्ध अज्ञान नष्ट हो जाता है, यह सत्य है, किंतु यह तो बहुत नीचेकी बात है—इससे मूल अज्ञानके विनष्ट होनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

इसलिये, सबसे पहले, जिससे मूल अज्ञान मिट जाय उसीपर विचार करना चाहिये। पहले यह कहा जा चुका है कि इस अज्ञानको मिटानेके मार्गमें कर्म, ज्ञान और भक्ति किसीकी भी वैसी उपयोगिता नहीं है; क्योंकि ये सब मूलका स्पर्श ही नहीं करते। एकमात्र भगवान्की कृपाशक्तिके द्वारा ही इस मूल अज्ञानकी निवृत्ति हो सकती है, अन्य उपायोंसे नहीं। भगवत्कृपा स्वभावसिद्ध है एवं वह अहैतुक होनेपर भी आधारकी योग्यताके अनुसार उसमें कार्यक्षमता प्रतिबिम्बित होती है। कृपाके नित्य होनेपर भी जबतक जीवात्माका मूल आवरणरूप मल परिपक्व नहीं हो जाता, तबतक वह उसमें संचालित नहीं हो सकती। किंतु मल परिपक्व होनेपर मलपाकके तारतम्यके अनुसार कृपा संचारित हुए बिना नहीं रहती है। जिसे लौकिक जगत्में दीक्षा कहते हैं, वह उसीका फल है। यह दीक्षा स्थूल भी हो सकती है और सूक्ष्म भी; किंतु यह है अत्यन्त आवश्यक। इसके न होनेतक साधनाका असर उतना अधिक नहीं होता, जितना होना चाहिये; क्योंकि साधना बद्धिका व्यापार है। साधना अथवा

उपासना आदिसे बौद्ध ज्ञानका उदय होता है और बौद्ध अज्ञानकी निवृत्ति होती है; तब उस मुक्त हृदयमें गुरु-कृपाका अर्थात् परमेश्वरके अनुग्रहका फल प्रत्यक्ष अनुभूत होता है। इस अनुभवका रूप है अपनेको शिवरूपमें जानना। यह अनुभव अमूलक नहीं है; क्योंकि शिवत्वके आचरणरूपी मलकी निवृत्ति होनेके साथ ही जिस स्वरूपका प्रकाश होता है, वह बौद्ध-ज्ञानजनित बौद्ध अज्ञानकी निवृत्तिके बाद हृदयमें प्रकाशित हो उठता है। यही जीवन्मुक्तिकी सूचना और मानव-जीवनकी परिपूर्ण सार्थकता है। देहान्त होनेपर बुद्धिरूपी घड़ेके फूट जानेपर आत्मा शिवरूपमें विराजमान होता है, बुद्धिका प्रश्न तब फिर नहीं रहता। यह प्राप्ति किसी नूतन वस्तुकी प्राप्ति नहीं है। आत्मा जो स्वयं शिवरूपी है, विस्मृत हो गया था, विस्मृतिके हटनेपर स्मृतिका पुनः उदय होनेसे आत्मा शिवरूपमें प्रतिष्ठित होता है। यह उसका परमलाभ है। इसके लाभके बिना केवल कैवल्य-अवस्थामें स्थित होकर कर्मके अतीत होनेपर भी पशुत्वके निवृत्त न होनेसे पूर्णत्व-लाभ शेष रह जाता है। कालान्तरमें उस मलको हटाना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है; क्योंकि जबतक वह मल नहीं हटाया जाता, तबतक आत्माका अपना स्वरूपभूत शिवत्व अप्राप्त ही रह जाता है। आत्मस्वरूपकी उपलब्धि ही जीवनकी साधना—सच्चारित्र्यका वास्तविक लक्ष्य है। इसी चरम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये सच्चारित्र्य उपजीव्य है। सच्चारित्र्यसे ही बौद्ध एवं आनुभविक ज्ञानका मार्ग प्रशस्त होता है तथा मलमूलक अज्ञान नष्ट होकर आत्म-साक्षात्कार फलीभूत होता है।

संयम-सदाचारसे युक्त जीवन ही कल्याणका साधन

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

हमारा प्राचीन समाज शास्त्रीय नियमोंपर ही निर्मित हुआ था। हिन्दूशास्त्र प्रायः प्रत्येक मानवको ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदि तपका ही आदेश देते हैं। ये परिणाममें मधुर और मंगलमय हैं। यही कारण था कि पूर्वकालके बड़े-बड़े वैभवशाली राजर्षि अपनी लौकिक सुख-समृद्धिपर लात मारकर इनकी साधनाके लिये वनमें चले जाते थे। वे जानते थे कि इस संसारका जीवन क्षणिक है, यहाँके सुख-भोग

नश्वर हैं। वे जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधिके चक्रमें फँसानेवाले हैं। इन भोग-विलासोंके मोहमें पड़कर नारी और नर ऐसे पाप-पंकमें निमग्न हो जाते हैं, जिससे उनका उद्धार होना कठिन हो जाता है। वे प्रायः सूकर-कूकर और कीट-पतंग आदि योनियोंमें पड़नेकी स्थितिमें आ जाते हैं।

सुख तो वही चाहनेयोग्य है, जो मिलकर फिर कभी खो न जाय, जो नित्य, सनातन और एकरस हो। ऐसे सुखके निकेतन हैं—एकमात्र मंगलमय भगवान्। अतः

सभी भोग नश्वर और क्षणिक हैं। यह दुर्लभ मानव-शरीर भी पता नहीं, कब हाथसे चला जाय। यह समझकर अब भी चेतना चाहिये। जो समय प्रमादमें बीत गया, सो तो बीत गया, अब आगे नहीं बीतना चाहिये—
‘अबलौं नसानी अब न सैहैं। राम-कृपा भव-निसा

सिरानी, जागे फिर न डसैहैं॥' (विनयप०) ऐसा निश्चय करके बुरे कर्मोंकी ओरसे मनको खींचे। इन्द्रियोंपर, मनपर नियन्त्रण करे।

अपने दोषोंको नित्य-निरन्तर बड़ी सावधानीसे देखते रहना चाहिये। ऐसी तीक्ष्ण दृष्टि रखनी चाहिये कि मन कभी धोखा न दे सके और क्षुद्र-से-क्षुद्र दोष भी छिपा न रह सके, साथ ही यह हो कि दोषको कभी सहन न किया जाय, चाहे वह छोटासे छोटा ही क्यों न हो। इस प्रकार प्रयास करनेपर अपने दोष मिटते रहेंगे और दूसरोंके दोषोंका दर्शन और चिन्तन क्रमशः बन्द हो जायगा। अपने दोष एक बार दीखने लगनेपर फिर वे इतने अधिक दीखेंगे कि उनके सामने दूसरोंके दोष नगण्य प्रतीत होंगे और उन्हें देखते लज्जा आयगी। इसी बातको प्रकट करते हुए कबीरजीने कहा है—

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न पाया कोय।

जो तन देखा आपना, मुझ-सा बुरा न कोय॥

अतएव प्रत्येक मनुष्यको आत्मसुधारके लिये प्रयत्न करना चाहिये। उन लोगोंको तो विशेषरूपसे करना चाहिये, जो समाज और देशकी सेवा करना चाहते हैं। वाणीसे या लेखनीसे वह कार्य नहीं होता, जो स्वयं वैसा ही कार्य करके आदर्श उपस्थित करनेसे होता है। स्वयंके सदाचारका प्रभाव अतुलनीय होता है। यहाँतक कि फिर उपदेशकी भी आवश्यकता नहीं होती। महापुरुषोंके आचरण ही सबके लिये आदर्श और अनुकरणीय होते हैं। इसीलिये महापुरुषोंको यह ध्यान भी रखना पड़ता है कि उनके द्वारा कोई ऐसा कार्य न हो जाय, जो नासमझीके कारण जगत्के लिये हानिकर हो। इसलिये वे उन्हीं निर्दोष कर्मोंको करते हैं, जो उनके लिये आवश्यक न होनेपर भी जगत्के लिये आदर्शरूप होते हैं और करते भी इस प्रकारसे हैं, जिनका लोग सहज ही अनुकरण करके लाभ उठा सकें। स्वयं सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे गीतामें इसी दृष्टिसे कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।

स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

(३।२१)

‘श्रेष्ठ पुरुष जैसा-जैसा आचरण करता है, दूसरे

आचरणसे जो कुछ प्रमाण कर देते हैं—जैसा आदर्श उपस्थित करते हैं, सारा जनसमुदाय उसीका अनुकरण करने लगता है।’

इससे पता लगता है कि श्रेष्ठ पुरुषोंपर कितना बड़ा दायित्व है और उन्हें अपने दायित्वका निर्वाह करनेके लिये कितनी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये एवं किस प्रकारसे स्वयं आचरण करके लोगोंके सामने पवित्र आदर्श उपस्थित करना चाहिये। सत्पुरुषोंद्वारा आचरणीय सदाचार इस प्रकार हैं—

मनका सदाचार—(१) कभी किसीका बुरा न चाहे, बुरा होता देखकर प्रसन्न न हो। (२) व्यर्थ चिन्तन, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन, काम-क्रोध-लोभ आदिके निमित्तका चिन्तन न करे। (३) किसीकी कभी हिंसा न करे (किसीको किसी प्रकार कष्ट पहुँचाना हिंसा है)। (४) विषयोंका चिन्तन न करके भगवान्का चिन्तन करे। (५) भगवान्की कृपापर विश्वास रखे। उनकी लीलाका, उनके नाम, गुण, तत्त्वका चिन्तन करे। सन्तोंके चरित्रोंका, उनके उपदेशोंका चिन्तन करे। (६) पुरुष स्त्री-चिन्तन और स्त्री पुरुष-चिन्तन न करे (यह सदाचार नहीं है)। (७) नास्तिक, अधर्मी, अनाचारी, अत्याचारी तथा उनकी क्रियाओंका चिन्तन न करे। (उनकी आलोचनाओंसे भी सूक्ष्म चिन्तन हो जाता है, अतः उनसे भी बचे)।

वाणीका सदाचार—(१) किसीकी निन्दा-चुगली न करे। यथासाध्य परचर्चा तो करे ही नहीं। किसीकी भी व्यर्थ आलोचना न करे। आलोचक दूसरेको तो सुधारता है, पर स्वयं दोष-दृष्टिका अभ्यासी बनकर बिगड़ता जाता है। (२) झूठ न बोले। असत्य पापोंका बाप है और नरकका खुला द्वार है। (३) कटु शब्द, अपशब्द न बोले। किसीका अपमान न करे। किसीको शाप न दे। अश्लील शब्दका उच्चारण न करे। अश्लील शब्दके उच्चारणसे सरस्वती कुपित होती हैं। (४) नम्रतायुक्त मधुर वचन बोले। मीठा वचन वशीकरण मन्त्र कहा गया है। मधुर वचनसे चारों ओर सुख उपजता है। सुख ही तो मनुष्यका साध्य है न? (५) हितकारक वचन बोले। वाणीसे भी किसीका अहित न करे। बातसे ही बात बिगड़ती है। (६)

‘श्रेष्ठ पुरुष जैसा-जैसा आचरण करता है, दूसरे व्यर्थ न बोले। अभिमानके वाक्य न बोले। अनर्गल,
Induism Discord Server <https://dss.cc/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shr
माँ वैसा-वैसा ही आचरण करती हैं। वे अपने अहंकारकी वज्राँ बोलनेवालोंको माहिमा देती हैं।

(७) भगवद्गुण-कथन, शास्त्रपठन, नामकीर्तन, नामजप करे। पवित्र पद-गान करे। स्वस्तिवाचन, मंगलपाठ आदि सदा कल्याणदायक होते हैं। (८) अपनी प्रशंसा कभी न करे। आत्मश्लाघा अपने-आपको तिनकेसे भी हल्का बना देती है। आत्मप्रशंसककी सर्वत्र निन्दा होने लगती है। (९) जिससे गौ-ब्राह्मणकी, गरीबकी या किसीके भी हितकी हानि होती हो, ऐसी बात न बोले। यह प्रयत्न करे कि जो हितकर और प्रिय हो उसे ही बोले। (१०) आवश्यकता होनेपर दूसरोंकी सच्ची प्रशंसा भले ही करे, किसीकी भी व्यर्थ खुशामद न करे। प्रशंसा या स्तुति अच्छे गुणों और कार्योंमें प्रवृत्ति कराती है और खुशामद झूठी महिमाको उत्पन्नकर दम्भको उभारती है। (११) गम्भीर विषयोंपर विचारके समय विनोद न करे। ऐसा हँसी-मजाक न करे, जो दूसरोंको बुरा लगे या जिससे किसीका अहित होता हो। व्यर्थ हँसी-मजाक तो करे ही नहीं। हँसी-मजाकमें भी अशिष्ट एवं अश्लील शब्दोंका प्रयोग न करे। हँसी-मजाक भयंकर अनर्थके कारणतक बन जाते हैं।

शरीरका सदाचार—(१) किसी प्राणीकी हिंसा न करे। किसीको किसी प्रकारका कष्ट न दे। (२) अनाचार-व्यभिचारसे बचे। ये दोनों समाजसे और स्वर्गसे गिरा देते हैं। (३) सबकी यथायोग्य सेवा करे। सेवा धर्म है और सेवासे मेवा (परम सुख) मिलता है। (४) अपना काम अपने हाथसे करे। स्वावलम्बित्व आत्मशक्तिका सदुपयोग है। (५) गुरुजनोंको प्रतिदिन प्रणाम करे। अभिवादनसे आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं। (६) पवित्र स्थानोंमें, तीर्थोंमें, सत्संगोंमें सन्तोंके दर्शन-हेतु जाय। इससे संयम और सदाचारका बल मिलता है। (७) मिट्टी, जल आदिसे अपने शरीरको पवित्र रखे। शुद्ध जलसे स्नान करे। (८) पाखानेमें नंगा होकर न जाय। टबमें बैठकर अथवा नंगा होकर स्नान न करे। यह सब हमारे शिष्टाचारके विरुद्ध हैं। (९) मलत्यागके लिये बाहर जाय तो नदी या तालाब आदिके किनारे भूलकर भी मलत्याग न करे। मलपर मिट्टी, बालू आदि डाल दे, जिससे दुर्गन्ध न फैले। शौचाचारकी यह भारतीय पद्धति अत्यन्त उत्तम है। (१०) मल-मूत्रका त्याग करके भलीभाँति हाथ-पैर धोये, कुल्ला करे। (११) खड़ा होकर

पेशाब न करे। खड़े होकर पेशाब करनेका स्वभाव पशुओंका होता है। (१२) जहाँ-तहाँ थूके नहीं; अपवित्र, दूषित पदार्थोंका स्पर्श न करे। (१३) रोगकी, जहाँतक हो, आयुर्वेदिक चिकित्सा कराये। आयुर्वेद-चिकित्सा अपने देशकी जल-वायु और संस्कार-संस्कृतिके अनुरूप है। (१४) देशी दवाइयोंमें भी तथा आवश्यक होनेपर एलोपैथिक आदि दवाका सेवन करना पड़े तो उनमें भी जिनमें कोई जान्तव पदार्थ हो, उनका प्रयोग बिल्कुल ही न करे। प्राकृतिक चिकित्सापर, खान-पानके संयम आदिपर विशेष ध्यान रखे। रामनामकी दवा ले। जब नाम भवरोगका नाशक है तो साधारण रोगकी तो बात ही क्या? पर इसके लिये नाम-प्रभावपर अटूट नैष्ठिक विश्वास होना चाहिये।

जो साधनसम्पन्न बड़भागी पुरुष अपने दोष देखने लगते हैं, उनके दोष मिटते देर नहीं लगती। फिर यदि उनको अपनेमें कहीं जरा-सा भी कोई दोष दीख जाता है तो वे उसे सहन नहीं कर सकते और पुकार उठते हैं कि 'मेरे समान पापी जगत्में दूसरा कोई नहीं है।' एक बार महात्मा गांधीजीसे किसीने पूछा था कि 'जब सूरदास, तुलसीदास-सरीखे महात्मा अपनेको महापापी बतलाते हैं, तब हमलोग बड़े-बड़े पाप करनेपर भी अपनेको पापी मानकर सकुचाते नहीं, इसमें क्या कारण है?' महात्माजीने इसके उत्तरमें कहा था कि 'पाप मापनेका उनका पैमाना दूसरा था और हमारा दूसरा है।' सारांश यह कि दूसरोंके दोष तो उनको दीखते न थे और अपना क्षुद्र-सा दोष वे सहन नहीं कर सकते थे। मान लीजिये, भक्त सूरदासजीको कभी क्षणभरके लिये भगवान्की विस्मृति हो गयी और जगत्का कोई दृश्य मनमें आ गया, बस, इतनेसे ही उनका हृदय व्याकुल होकर पुकार उठा—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।

जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमक हरामी ॥

×

×

×

मनुष्यको चाहिये कि वह नित्य-निरन्तर आत्म-निरीक्षण करता रहे और घण्टे-घण्टेमें बड़ी सावधानीसे यह देखता रहे कि इतने समयमें मन, वाणी, शरीरसे मेरे द्वारा कितने और कौन-कौनसे दोष बने हैं और भविष्यमें दोष न बननेके लिये भगवान्के बलपर निश्चय करे तथा भगवान्से प्रार्थना करे कि वे ऐसा बल दें।

गीतोक्त सदाचार

* जो व्यक्ति भगवान्‌को भी मानता हो और असत्-आचरण (दुराचार) भी करता हो, उसके द्वारा असत्-आचरणोंका विशेष प्रचार होता है, जिससे समाजका बड़ा नुकसान होता है। कारण कि जो व्यक्ति भीतरसे भी बुरा हो और बाहरसे भी बुरा हो, उससे बचना बड़ा सुगम होता है; क्योंकि उससे दूसरे लोग सावधान हो जाते हैं। परंतु जो व्यक्ति भीतरसे बुरा हो और बाहरसे भला बना हो, उससे बचना बड़ा कठिन होता है। जैसे, सीताजीके सामने रावण और हनुमान्‌जीके सामने कालनेमि राक्षस आये तो उनको सीताजी और हनुमान्‌जी पहचान नहीं सके; क्योंकि उनका वेश साधुओंका था।

दैवी सम्पत्ति है। 'देव' नाम भगवान्का है और उनकी सम्पत्ति 'दैवी सम्पत्ति' कहलाती है। भगवान्की सम्पत्तिको अपनी माननेसे अथवा अपने बलसे उपार्जित माननेसे अभिमान आ जाता है, जो आसुरी सम्पत्तिका मूल है। अभिमानकी छायामें सभी दुर्गुण-दुराचार रहते हैं।

सद्गुण-सदाचार किसीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है। अगर ये व्यक्तिगत होते तो एक व्यक्तिमें जो सद्गुण-सदाचार हैं, वे दूसरे व्यक्तियोंमें नहीं आते। वास्तवमें ये सामान्य धर्म हैं, जिनको मनुष्यमात्र धारण कर सकता है। जैसे पिताकी सम्पत्तिपर सन्तानमात्रका अधिकार होता है, ऐसे ही भगवान्की सम्पत्ति (सद्गुण-सदाचार)-पर प्राणिमात्रका समान अधिकार है।

अपनेमें सद्गुण-सदाचार होनेका जो अभिमान आता है, वह वास्तवमें सद्गुण-सदाचारकी कमीसे अर्थात् उसके साथ आंशिकरूपसे रहनेवाले दुर्गुण-दुराचारसे ही पैदा होता है। जैसे, सत्य बोलनेका अभिमान तभी आता है जब सत्यके साथ आंशिक असत्य रहता है। सत्यकी पूर्णतामें अभिमान आ ही नहीं सकता। असत्य साथमें रहनेसे ही सत्यकी महिमा दीखती है और उसका अभिमान आता है। जैसे, किसी गाँवमें सब निर्धन हों और एक लखपति हो तो उस लखपतिकी महिमा दीखती है और उसका अभिमान आता है। परंतु जिस गाँवमें सब-के-सब करोड़पति हों, वहाँ लखपतिकी महिमा नहीं दीखती और उसका अभिमान नहीं आता। तात्पर्य यह है कि अपनेमें विशेषता दीखनेसे ही अभिमान आता है। अपनेमें विशेषता दीखना परिच्छिन्नताको पृष्ठ करता है।

सद्गुण-सदाचारकी स्वतन्त्र सत्ता है, पर दुर्गुण-दुराचारकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। कारण कि असत्को तो सत्की जरूरत है, पर सत्को असत्की जरूरत नहीं है। झूठ बोलनेवाला व्यक्ति थोड़े-से पैसोंके लोभमें सत्य बोल सकता है, पर सत्य बोलनेवाला व्यक्ति कभी झूठ नहीं बोल सकता।

(३) 'प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते'—तथा हे पार्थ! उत्तम कर्ममें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है। दान, पूजा, पाठादि जितने भी

शास्त्रविहित शुभकर्म हैं, वे स्वयं ही प्रशंसनीय होनेसे सत्कर्म हैं, किंतु इन प्रशस्त कर्मोंका भगवान्‌के साथ सम्बन्ध नहीं रखनेसे वे ‘सत्’ न कहलाकर केवल शास्त्रविहित कर्ममात्रमें रह जाते हैं। यद्यपि दैत्य-दानव भी प्रशंसनीय कर्म तपस्यादि करते हैं, परंतु असद् भाव—दुरुपयोग करनेसे इसका परिणाम विपरीत हो जाता है—

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।

परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥

(गीता १७।१९)

जो तप मूढतापूर्वक हठसे, मन, वाणी और शरीरकी पीड़ाके सहित अथवा दूसरेका अनिष्ट करनेके लिये किया जाता है, वह तप तामस कहा गया है। वस्तुतः प्रशंसनीय कर्म वे होते हैं, जो स्वार्थ और अभिमानके त्यागपूर्वक ‘सर्वभूतहिते रताः’ भावसे किये जाते हैं। शास्त्रविहित सत्कर्म भी यदि अपने लिये किये जायँ तो वे असत्कर्म हो जाते हैं, बाँधनेवाले हो जाते हैं। उनसे यदि ब्रह्मलोककी प्राप्ति भी हो जाय तो वहाँसे लौटकर आना पड़ता है—‘आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्ति-
नोऽर्जुन।’ (गीता ८।१६)

भगवान्‌के लिये कर्म करनेवाले सदाचारी पुरुषका कभी नाश नहीं होता—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥

(गीता ६।४०)

‘हे पार्थ! उस पुरुषका न तो इस लोकमें नाश होता है और न परलोकमें ही। क्योंकि हे प्यारे! कल्याणकारी (भगवत्प्राप्तिके लिये) कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता।’

(४) 'यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते'—(गीता १७। २७)। 'यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति है, वह भी 'सत्'—कही जाती है।' सदाचारमें यज्ञ, दान और तप—ये तीनों प्रधान हैं, किंतु इनका सम्बन्ध भगवान्से होना चाहिये। यदि इन (यज्ञादि)—में मनुष्यकी दृढ़ स्थिति (निष्ठा) हो जाय तो स्वप्नमें भी उसके द्वारा दुराचार नहीं हो सकता। ऐसे दृढ़निश्चयी सदाचारी पुरुषके

भगवान् 'सत्' स्वरूप हैं। अतः उनसे जिस किसीका भी सम्बन्ध होगा, वह सब 'सत्' हो जायगा। जिस प्रकार अग्निसे सम्बन्ध होनेपर लोहा, लकड़ी, ईंट, पत्थर, कोयला—ये सभी एक-से चमकने लगते हैं, वैसे ही भगवान्‌के लिये (भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे) किये गये छोटे-बड़े सब-के-सब कर्म 'सत्' हो जाते हैं, अर्थात्

गृहस्थमें साधुतामय जीवनचर्या

[ब्रजभाषामें]

(गोलोकवासी पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

पापसे बचें

(१) गृहस्थमें रहते भये अपने प्रारब्धवश दुःख आवैं तौ दुःख सह लें, अभाव एवं कष्ट भोग लें, किंतु अधर्म, अन्याय, असत्य, चोरी, छल, कपट, दम्भसौं सर्वथा बचैं। कबहूँ, कैसी ह परिस्थितिमें पाप न करैं।

यह कलिकाल है। अत्यन्त दुस्तर समय है। भविष्य अच्छी नहीं है। सर्वत्र कुसंगकी भरमार है। बहिर्मुखता बढ़ रही है। सबकौ ध्यान भौतिकताकी ओर है। ऐसे समयमें उत्तम पुरुषनकी वृत्ति हू पापमय बनवेकी सम्भावना रहै है, अतः बहुत ही सावधानीसौं चलवेकी आवश्यकता है। जो पापसौं डरते भये श्रीभगवद्भजन एवं सत्संग करते रहेंगे, वही या दुस्तर समयकूँ पार कर पावेंगें। अन्यथा, मनष्यनकौ पतन ही विशेष होयगौ।

(२) पाप न बनै और धर्मपै चलै तौ आगे उठवेकौ मार्ग अपने आप बन जायगौ। पाप करकैं पाप काटवेके लिये दान-पुण्य, व्रतादिक धर्मनकौ आचरण करना, परन्तु पापवृत्तिकूँ न त्यागनौ, यह तौ और अधिक पाप बढ़ानौ है।

(३) पाप कर्म तत्काल ही मानसिक अशान्ति उत्पन्न करें हैं। शरीरकौ कष्ट भोग लेय, किंतु वह काम न करै जाके परिणाममें मनमें अशान्ति और क्लेश होय। शरीरकौ कष्ट इतनौ दुःखद नहीं होय है, जितनौ भयंकर कष्ट मानसिक अशान्तिसौ होय है।

(४) अज्ञानवश अपनेसों पाप कर्म कबहूँ बन चुके होंय तौ जब उन छोटे कर्मनके फल-भोगकौ समय आवै, तब श्रीभगवान्कौ मंगल विधान मानकें चुपकेसों भोग लेय, श्रीभगवान्सों कुछ न कहै। श्रीभगवान् जीवमात्रकी अम्मा हैं। अम्माद्वारा कियौ गयौ दण्डविधान शिशुके हितके लिये ही होय है। हाँ, आगे पाप न बनै। यह सावधानी रहै।

दूसरी बात यह है कि जब पापके फल-भोगकौ समय आवै है तब तम बढ़ जाय है। वह उत्तम विचार नहीं आवन देय है। या समय वृत्ति गिरवेकी आशंका रहै है।

काहू सन्तमें दृढ़ श्रद्धा होयवेपै सन्त-कृपासौं ही मायाके जाल—पाप, प्रपंच, कामना एवं आसक्तिसौं बच सकै है।

ॐचे कर्म ही करे

यह संसार कर्मके अधीन है। हमने कर्म करते भये देखे हैं, भोगते भये हू देखे हैं, दूसरों जन्म हू देखौ हैं। उत्तम कर्म करोगे तौ यहाँ सुख पाओगे और परलोक हू बनेगौ। जीव कर्म करवेमें स्वतन्त्र है—पानीमें हाथ डारेगौ तौ ठण्डौ होयगौ, आँचमें हाथ डारैगौ तौ जरैगौ। जल और अग्नि दोनों परमात्माके बनाये भये हैं। यह मनुष्यके विवेकपै निर्भर है कि वह काहेमें हाथ डारै। संसारमें सत्, असत् दोऊ हैं, सत्की ओर बढ़ोगे, सत्कर्म करोगै तौ परिणाममें सुख-शान्ति, स्वर्ग, मोक्ष और श्रीभगवद्धामकी प्राप्ति तक है सकै है। असत्कर्मकौ परिणाम—अशान्ति, नीच पशु-पक्षी, तिर्यक् योनि और नरककी प्राप्ति है। मनुष्यजन्म पायकैं हू बुरे कर्म क्यों किये जायँ? बुरे कर्म सर्वथा त्याग देने चाहिये। असत् संसारके प्राणी-पदार्थनकी चाह एवं आसक्ति ही पापमें कारण है। कामासक्तकूँ कुत्ता, सूअर बननौ परै है। धनासक्त लोभी प्राणीकूँ सर्प बननौ परै है।

ऊँचे कर्म ही करौ। श्रीभगवान्की प्राप्तिके लिये ही समस्त कर्म करनौ यही सबसौँ ऊँचे कर्म हैं। श्रीभगवान् एकमात्र उद्देश्यकूँ ही देखें हैं कि यह काहेके लिये कार्य कर रह्यौ है। यदि उद्देश्यमें श्रीभगवान् हैं तौ क्रिया बिगड़ जायवेपै ह भावग्राही श्रीभगवान् वाकूँ अपनाय लेय हैं।

सतयुगी रहनी

गृहस्थीमें रहते भये हूँ ऊँचे महात्मा बन सकें हैं। महात्मा कैसे बन सकें हैं? याके लिये आवश्यक है कि जो काम करैं संसारकूँ दिखायवेके लिये नहीं, सत्यतासौँ ईश्वरकूँ दिखायवेके लिये बनै। आपलोग कलियुगमें रहते भये हूँ सतयुगी रहनीसौँ रहैं। हमने ऐसे सद्गृहस्थ देखे हैं जिनकौँ जीवन कलियुगमें रहते भये हूँ सतयुगी रह्यौ।

सतयुगी रहनी है—

(१) शास्त्रसम्मत सदाचारकौ पूरौ पालन करै।

MADE WITH LOVE BY Avinash/Sharma

सत्त्विक व्यवहार ही करै। काहू काममें भूलसौं हू तमोगुण न आवन पावै।

(३) सदा सत्य बोले। झूठ, छल, कपटसौं बचतौ रहै।

(४) काहूकी निन्दा, अपमान एवं अवज्ञा न करै। काहूँकुँ दुःख न देय। कबहू क्रोध न करै। क्रोधके स्थानपै समझायवेसौं काम लेय। यदि काहूके सुधारके लिये, हितके लिये, हितकी भावनासौं क्रोध करना आवश्यक जान परै तौ हू अन्तःकरणमें क्षोभ न आवन पावै।

(५) काहूमें ममता-आसक्ति न होन पावै। काहूसौं वैर-विरोध न करै।

(६) संसारमें रहैंगे तौ संसारके काम करने ही परैंगे, संसारी दायित्व हू निभाने परैंगे। हाँ, संसारमें रहते भये शुद्ध पवित्र कर्म ही करै। अधर्म, अन्याय, पापकौ कोई काम अपनेसौं न बनै। यह शरीर श्रीभगवान्कौ है। खोटे काम करकैं या शरीरकुँ अपवित्र न बनावै। याकुँ श्रीभगवान्की सेवाके योग्य ही बनौ रहन देय।

(७) सबसौं प्रेम, सबकौ हित तथा सबके साथ सत्य एवं सरल व्यवहार ही करै।

(८) काहू बातकौ अहंकार न करै। सदैव दैन्य भाव ही बनौ रहै।

(९) बनै जहाँतक हम सबके काम आवैं, परंतु काहूसौं अपनौ स्वार्थ न साधैं।

(१०) गुरुजननके प्रति सम्मानकौ भाव, बराबर वारेनसौं प्रेम तथा अपनेसे छोटेंसौं दयाकौ व्यवहार करनौ।

(११) माता-पिता, गुरु इनकी भगवद्भावसौं सेवा करै।

(१२) सज्जननके साथ सम्पर्क राखै।

(१३) गृहस्थमें रहते भये आवश्यक कर्तव्यकौ सत्यतापूर्वक पालन करते भये हू नित्य नियमित निष्काम भावसौं श्रीभगवद्भजन करै।

(१४) स्वयं श्रीभगवान्कौ बनै और अपने आश्रित घर-परिवारके समस्त जननकुँ इनकौ बनावै। बालककुँ बालकपनसौं ही श्रीभगवान्में लगायवेकौ प्रयत्न करै।

(१५) परचर्चा, परनिन्दा, वाद-विवाद एवं व्यर्थ बात न करै। जहाँ ताँई बनै सच्चर्चा ही करै, सच्चर्चा ही सुनै।

यह सद्गृहस्थकी रहनी है। या रहनीसौं घरमें सुख,

शान्ति एवं आनन्दकी बाढ़ आ जाय है। घरमें रहते भये ही लोक-परलोक दोऊ बन जायँ हैं।

गृहस्थमें साधुतामय व्यवहार

(१) सबसौं प्रेमकौ बर्ताव करै। सदैव यही ध्यान राखै कि हमसौं कोई दुःख न पावै।

(२) जहाँ ताँई है सकै सबकुँ सुख पहुँचायवे कौ, सबकी सेवा, सहायता करवेकौ ही प्रयत्न रहै। अपने सुख एवं अपनी सेवा, सहायता लैवे कौ कम विचार राखै।

(३) सन्त श्रीकबीरदासजीकौ एक दोहा है—
चार वेद छह शास्त्रमें बात सुनी है दोय।

सुख दीन्हे सुख होत है दुःख दीन्हे दुःख होय॥

(४) सबकौ हित ही सोचै, हित ही करै, हितभरी बात ही कहै। काहूकौ अनिष्ट न सोचै, न करै, न अनुमोदन ही करै।

(५) दूसरेकौ अनिष्ट सोचवेसौं, अनिष्ट करवेसौं और अनिष्टकौ अनुमोदन करवेसौं दूसरेकौ अनिष्ट होयगौ कि नहीं, यह तौ वाके प्रारब्धपै निर्भर है, किंतु हमने अपने अनिष्टकुँ आमन्त्रण दै दियौ। वह शीघ्र ही हमारे समीप आयवे वारौ है।

(६) जहाँ ताँई बनै सबकौ सम्मान ही करै। अपनौ सम्मान न चाहै। जहाँ ताँई बन सकै काहूकौ अपमान न करै। अपनौ अपमान होयवेपै असन्तुष्ट न हो, दीनता धारण करै।

(७) अपनी उन्नति सोचनौ उचित है, किंतु काहूकी अवनति न सोचै। काहूकी उन्नतिसौं ईर्ष्या न कर बैठे, अपितु दूसरेनकी उन्नतिकुँ देखकैं सदैव प्रसन्न रहै।

(८) काहूके दोष न देखै, न सुनै और न कहै। जो बुरे व्यक्तिमें हू अच्छाई देखै है, वही सबसौं उत्तम व्यक्ति है और जो उत्तम व्यक्ति में हू बुराई ढूढ़ै है, वही सबसौं बुरौ है।

(९) संसारमें कहुँ राग अथवा द्वेष न रहै।

(१०) मित्र भले ही अनेकन होय, किंतु या भगवत्सृष्टिमें अपनौ एक हू शत्रु न बनावै।

(११) दो बातनकुँ सदा भूलातौ रहै—

(अ) अपनेसौं काहूकौ उपकार बन गयौ होय।

(ब) अपने साथ काहूने अपकार कियौ होय।

(१२) दो बातनकुँ कबहुँ न भूलै—

(अ) अपने साथ यदि काहूने उपकार कियौ होय।

(ब) दुर्भाग्यवश अपनेसों काहूँ अपकार बन गयौ
होय ।

(१३) प्राणिमात्रके प्रति हित, सुख, सम्मानकी भावना तथा सहानुभूति, सेवा एवं प्रेम अन्तःकरणकी शीघ्र श्रद्धि एवं श्रीभगवत्कृपा-प्राप्तिकौ अचक साधन है।

सद्ग्रहस्थ साधकके लिये उपदेश

(१) ऐसौ अभ्यास बढ़ाओ कि निरन्तर श्रीनाम-जप होयवे लगै।

(२) परधन, परस्त्रीके परित्यागकी बात तुमसों कहवेकी आवश्यकता नहीं है। ये दुर्गुण तौ तुममें है ही नहीं। हाँ, या बातकौ बहुत ही ख्याल रहै कि हमसों काहकौ अनिष्ट न होन पावै।

(३) जब तुम गृहस्थ हौ, तब गृहके समस्त प्राणीनकौ पालन-पोषण, सन्मार्गमें लगानौ तथा श्रीभगवद्भक्त बनानौ यह कर्तव्य है।

सत्प्रयत्नद्वारा द्रव्य-संचय करनौ यहू कर्तव्य है।

हाँ, यह सब करते भये हूँ इनमें ही आसक्त न हूँ जानौ ।

सन्त श्रीकबीरदासजीकौ यह पद सदैव ध्यान राखनौ
कि—

‘रहना नहीं देश विराना है।’

योग्य डॉक्टर अपने अस्पतालमें आये भये रोगीकी आरोग्यताकौ जैसे पूरौ ख्याल राखै है, अपनौ पूर्ण कर्तव्यपालन करै है, किंतु काहू रोगीमें आसक्त नहीं होय, एवमेव रहनी बनाऔ।

जानै इतनौ बड़ौ संसार रचौ है, वह याके पालन-पोषणमें पूर्ण समर्थ है। तुम तौ निमित्तमात्र हो।

(४) उचित यह है कि संसारी वस्तुनकूँ प्रारब्धकी देन समझकूँ इनके यथालाभमें ही सन्तोष करै। हाँ, पूर्ण प्रयत्न करै अपने सच्चे घरके ताँई सामान जुटायवेमें। सचचौ घर तौ सदैव एक ही है—परलोक। जो समस्त जीवन अपने समय, विद्या, चातुर्य, शरीर तथा सबरे अन्तःकरणकूँ संसारी कामनमें ही जुटायकूँ थकाय डारै हैं, वे परलोकके सुधारसौँ वंचित रह जायँ हैं। यह मूर्खता तुम मत कर बैठियौं।

(५) सबके प्यारे, सबसौं न्यारे, ऐसी रहनी रहिये।

(६) परलोकके सुधारकूँ आगेके लिये मत टालते

जड़्यों। कौन जाने भविष्यमें कैसौ समय आवैं। पूर्ण तत्परता, पूरी लगन, पूरौ उत्साह तथा पूर्ण उल्लासके साथ जुट परौ जीवनकी सफलतामें।

हमारे कहवेकौ यह तात्पर्य कबहूँ नहीं है कि घरके प्राणीनकौ पालन-पोषण न करौ। यद्वा घर त्यागकैं दिखाऊ विरक्त बन जाऔ। नहीं, कदापि नहीं। जब ताँई भोग्य है—रहौ गृहस्थमें ही किंतु अपने पूर्वजन्मनकी कमाई संसारी कामनमें ही मत खोय दीजौ।

(७) परदोषदर्शन, परनिन्दा, द्रोह, कठोरता तथा हिंसा इनकौ सर्वथा परित्याग कर देव।

(८) जब संसारी काम करौ हौ तौ पूरी लगनसौं जुट परौ हौ। ऐसे ही जब भजनमें लगौ तब पूरे उल्लाससौं यामें जुट परौ। ईमानदारी तौ तब है जब भजनमें सौ गुनौ उत्साह अधिक होय।

(९) श्रद्धावान्, गम्भीर, सरल, पूर्ण सदाचारी, सुशील, नम्र, गुरुजनसेवी, दीन-सहायक, परोपकारी, उदार, एवं क्षमाशील बनवेकौ अभ्यास बढ़ाऔ।

(१०) श्रीजीवनधनमें प्रेम बढ़ायवेकौ पूर्ण प्रयत्न करते रहौ। इनसौं कबहूँ कछु काम मत करइयौं। ये तौ केवल आत्मीयता तथा प्रियताके पात्र हैं।

(११) परम कल्याणके लिये जीवनमें दो बातें परम कर्तव्य हैं—

(अ) सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान तथा संयोग-वियोग आदिक द्वन्द जो आ जायँ, उनकूँ सहतौ जाय ।

(ब) हाँ, आगेके लिये अपनौ मार्ग परिमार्जित तथा उज्ज्वल बनातौ जाय।

(१२) जहाँ ताँई है सकै परिश्रम तथा यथासाध्य सत्यताके साथ व्यापार करते रहियौं। कैसी हू परिस्थिति आ जाय, अपनी सत्यताकौ त्याग मत करियौं। श्रीभगवद्-विधानकी मंगलमयतापै पूर्ण विश्वास बनाये रहियौं। मनमें अशान्ति न होन पावै।

(१३) यदि नेकहू अवकाश मिलै तौ भजन करवेमें
मत चकियौ।

या जीवनकूँ अधिक इंझटनमें मत फाँसियौं।

यही विचारते रहियौं तथा पूर्ण प्रयत्न करते रहियौं

कि याही जीवनमें भजन बन जाय।

गुड मार्निंग, गुड नून, गुड ऑफ्टर नून, गुड डे, गुड इवनिंग या गुड नाइट बोलेनेसे कुछ भी 'गुड' उसी प्रकार नहीं होता, जैसे स्वादिष्ट व्यंजनों, मिष्ठानों अथवा फलोंका स्मरण करनेसे वे मुँहमें नहीं आ जाते। जिन्हें मंगलमय प्रभात, मध्याह्न, अपराह्न, दिवस या रात्रिकी कामना हो, उन्हें सदा और सर्वत्र केवल भगवान्को ही स्मरण करना चाहिये; क्योंकि सभी अमंगलोंका नाश एवं मंगलोंकी सृष्टि करनेवाले केवल भगवान् हैं।

अतएव अपनी ओरसे ‘गुडनेस’ का ‘मैनेजमेण्ट’ करनेके अहंकारको छोड़कर ‘जय श्रीराम’, ‘जय श्रीकृष्ण’, ‘जय रामजीकी’, ‘जय सियाराम’, ‘राम-राम’ या ‘वन्दे मातरम्’ कहकर ही सामान्य अभिवादन करना चाहिये।

मूर्खतापूर्ण है 'बर्थ-डे सैलिब्रेशन'

रातके १२ बजे, अन्धकारके साम्राज्यमें, सूर्यकी अनुपस्थितिमें नये दिनके प्रारम्भकी कल्पना अविवेकको पराकाष्ठा है। एक अरब हैलोजन लाइटें भगवान् सूर्यके एक प्रतिशत प्रकाशकी बराबरी नहीं कर सकतीं। भगवान् सूर्य केवल प्रकाश ही नहीं देते; वे ऊष्मा, ऊर्जा, उत्साह, बल, स्फूर्ति, बुद्धि, प्रसन्नता और जीवन भी देते हैं।

वे ही पर्यावरणको जीवनके अनुकूल बनाते हैं। वे ऋतुकर्ता हैं, वे ही जलदाता हैं; समस्त अन्नों, फलों, वृक्षों, वनस्पतियों, औषधियों और धातुओं तथा खनिजोंका सृजन एवं विकास उन्हींकी कृपासे होता है। भगवान् सूर्यके अस्तके छः घंटे पश्चात् एवं उनके उदय के छः घंटे पूर्व नये दिनका प्रारम्भ हुआ मान लेना पश्चिमकी अवैज्ञानिक, अप्राकृतिक मनमानीका ज्वलन्त प्रमाण है। सारे संसारमें भारतीय कालगणना-पद्धति ही वैज्ञानिक है और विश्वसनीय है, वही तर्कसम्मत एवं तर्कसंगत है और उसके अनुसार दिनका शुभारम्भ भगवान् सूर्यके उदय तथा समापन उनके अस्तसे होता है, इसलिये जन्मदिन या अन्य संस्कारोंको सम्पन्न करनेकी भारतीय परम्परा दिनमें ही है, परन्तु पश्चिमकी रात्रिप्रधान निशाचरी कल्चरका अन्धानुकरण करके रातके बारह बजे केक कटवाकर, मोमबत्तियाँ बुझाकर 'बर्थ-डे' सैलिब्रेट करना और स्वस्तिवाचनके स्थानपर 'हैप्पी बर्थ-डे' चीखना मूढ़ताकी पराकाष्ठा ही तो है।

प्रातःस्नान करके भगवान् सूर्यको अर्घ्य देकर मन्दिरमें भगवान्की पूजा करके सभी गुरुजनोंके आशीर्वाद ग्रहण करके, हवन करके, दीनों-दुखितों, वंचितों, पीड़ितों एवं गोमाताकी सेवा-सहायता करके महोत्सवपूर्वक जन्मदिवस मनाना चाहिये।

उत्सव मनाना हो तो सन्ध्यामें गणपति-प्रतिमाके
Hinduism Discord Server-<https://dsc.gg/d>
सम्मुख अपने जीवनके विगत वर्षोंकी सन्ध्याके बरसों

दीपक जलाकर, स्वस्तिवाचन कराकर, प्रसाद—मोदक वितरण करके जन्म-दिवसका उल्लास व्यक्त करें और मधुर स्वरसे बधाई दे—‘जन्म-जयन्ती मंगलमय हो।’

वर्षारम्भ चैत्रसे ही होता है

हिमाच्छादित ठिडुरती धरतीपर पतझड़के मौसममें ३१ दिसम्बरकी रात १२ बजे, शोर मचाकर, शराब पीकर, परपुरुषों या परस्त्रियोंके साथ नाच-गाकर वर्षारम्भ भारतीय जीवनचर्या तथा वैज्ञानिकताके विपरीत है।

वर्षारम्भ वसन्त ऋतुमें नवपल्लवित वृक्षों और नवरागपूर्ण पुष्पोंके प्राकृतिक उल्लासमें चैत्रशुक्ल प्रतिपदासे होता है। भारतीय मास-पक्ष सर्वथा वैज्ञानिक हैं। शुक्लपक्ष विकासका तथा कृष्णपक्ष क्षयका प्रतीक है। सातों वार ग्रहोंपर एवं बारह मास चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़, श्रवण, भद्रा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा और उत्तराफाल्गुनी-जैसे नक्षत्रोंपर आधारित हैं।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके दिन सृष्टिका, पृथ्वीका सृजन भगवान्ने किया था; इसलिये भगवती पृथ्वीके जन्ममहोत्सवके रूपमें नवदिवसीय मातृपूजनका अनुष्ठान करते हुए नववर्षका स्वागत करना ही तर्कसंगत और प्रकृति-सम्मत है।

लक्ष्मी-पूजन

भारतीय प्रज्ञाने सर्वत्र मातृ-सत्ताके दर्शन किये हैं। पृथ्वीमें, नदियोंमें, वृक्षोंमें, गीता, श्रुति आदि ग्रन्थोंमें, गायत्री-जैसे मन्त्रोंमें मातृदर्शन करना, धनमें लक्ष्मीमाता, ज्ञानमें सरस्वतीमाता तथा शस्त्रोंमें शक्ति या दुर्गा-कालीमाताके दर्शन करना हिन्दूदर्शनकी अद्वितीय विशेषता है। इसलिये वसन्तपंचमीपर सरस्वती-पूजन, विजयादशमीपर दुर्गापूजन एवं दीपावलीपर लक्ष्मी-पूजनका आयोजन भारतीय जीवनचर्याके महत्त्वपूर्ण उपक्रम है।

सम्पूर्ण सृष्टिके विशेषतया मानवीय सृष्टिके संचालनकी प्रक्रियामें धनकी भूमिका सर्वोपरि है, किंतु उसके निरंकुश संग्रह और दुरुपयोगसे केवल वैषम्य और विषाद ही उत्पन्न होता है, इसलिये भारतीय महर्षियोंने कहा—धन लक्ष्मी है और लक्ष्मी माँ है, माँ सबका पालन करती है, पालन करता है, सबका विकास करती है, वह प्रणयिनी

भारतीय भावना भोगोंपर नहीं भक्तिपर केन्द्रित है। प्रत्येक प्राणी और पदार्थमें भगवान्की या भगवत्कृपाकी झलक पाना भारतीय भावनाका मूल है। अन्नमें भी यही भाव रहना चाहिये। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश भगवद्रूप हैं। वृक्ष, वनस्पति, अन्न, फल, शाक, पशु, पक्षी, जीव, जन्तु, पर्वत, सर, सागर एवं सरिताएँ—सभी भगवत् स्वरूप हैं, यह भावना ही भारत-भारती है, इसे विकसित करोगे तो जग और जीवन दोनों धन्य हो जायँगे।

दूकानों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानोंके नामकरणमें भी भगवान्का अपमान न हो—यह ध्यान रखा जाना चाहिये। बजरंगबली शू हाउस, दुर्गा मीट शॉप, बालाजी पोल्ट्री फॉर्म, विष्णु वाइन स्टोर, तुलसी जाफरानी जर्दी, हनुमान्

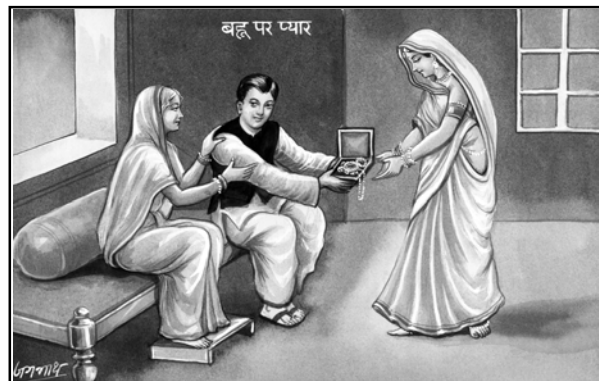
किसी भी स्थितिमें मांस, मछली, अण्डा, शराब, गाँजा, भाँग, अफीम और हिंसासे प्राप्त चमड़ेकी वस्तुओंका उपयोग न करनेवाला सद्गृहस्थ सत्पुरुष ही भगवान्की विशेष कृपाका पात्र बनता है।



गृहस्थ-आश्रममें जिस प्रकार सदाचारका पालन होता है, वैसा दूसरे आश्रममें नहीं। अतः विद्याध्ययन पूर्ण करके अन्तमें गृहस्थ-आश्रमकी शरण लेनी चाहिये। गृहस्थाश्रममें आकर सर्वप्रथम अपने ही वर्णकी शुभलक्षणा स्त्रीके साथ विवाह करे। वह स्त्री अपने पिताके गोत्रकी न हो और माताकी सपिण्ड न हो। यदि स्त्री शुभलक्षणा हो तो गृहस्थ पुरुष सदा सुख भोगता है। शरीर, आवर्त, गन्ध, छाया (कान्त), सत्त्व, स्वर, गात और वर्ण—विद्वान्द्वारा स्त्रीके

लक्षणोंकी परीक्षाके लिये ये आठ प्रकारके आधार बताये गये हैं। उक्त लक्षणों एवं सामुद्रिक शास्त्रीय उत्तम लक्षणोंसे युक्त स्त्रीसे विवाह करना चाहिये।

पिता, पितामह, भ्राता, कुल का कोई भी पुरुष तथा माता—ये क्रमशः कन्यादानके अधिकारी हैं। इनमें पहले-पहलेके न रहनेपर दूसरे-दूसरे कन्यादान कर सकते हैं। स्त्रियोंके सत्कारका अवसर आनेपर तथा उत्सवोंमें उन्हें वस्त्र, आभूषण और उत्तम अन्न आदि देकर सदा



सम्मानित करना चाहिये। जहाँ भूषण, वस्त्र और अन्न आदिसे सम्मानित होकर स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं, वहाँ सब देवता सुखपूर्वक निवास करते हैं—‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः’ तथा उस गृहमें किये हुए समस्त सत्कर्म सफल होते हैं। जिस घरमें पतिसे पत्नी और पत्नीसे पति सन्तुष्ट रहते हैं, वहाँ पग-पगपर कल्याणकी प्राप्ति होती है—

यत्र तुष्यति भर्त्रा स्त्री स्त्रिया भर्ता च तुष्यति ।

तत्र वेश्मनि कल्याणं सम्पद्येत पदे पदे॥

(स्क० पु० का० पू० ४०।६०)

निषिद्ध कर्मोंके सेवनसे और विहित कर्मोंके त्यागसे कलि और काल छिद्र देखकर सद्गृहस्थको नष्ट कर देते हैं। आयु तथा स्वर्गकी इच्छा करनेवाले गृहस्थको माँसका त्याग करना चाहिये। जो अज्ञानी अपने शरीरकी पुष्टिके लिये दूसरे जीवोंकी हत्या करते हैं, उन दुराचारियोंको न तो इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही। जो मांस खाता है, जो जीवोंको मारनेकी अनुमति देता है, जो मांस पकाता है, जो उसको खरीदता और बेचता है, जो अपने हाथसे मारता है, जो

बाँटता-परोसता है तथा जो आज्ञा देकर जीवहिंसा करता है—ये आठ प्रकारके मनुष्य हिंसक माने गये हैं। (स्क० पु० का० पू० ४०। २१-२२) जो सौ वर्षों तक प्रत्येक वर्ष अश्वमेधयज्ञ करता है तथा जो मांसभक्षण नहीं करता है, इन दोनोंमें परस्पर तुलना की जाय तो माँसका त्याग करनेवाला ही श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

सुखकी इच्छा रखनेवाले गृहस्थको चाहिये कि वह जैसे अपने-आपको सुखी देखना चाहता है, उसी प्रकार दूसरेको भी देखे। अपने और दूसरेमें बराबर सुख और दुःख होते हैं। दूसरे किसी जीवको सुख या दुःख दिया जाता है, वह सब पीछे चलकर अपनेपर ही संघटित होता है। जो कर्म नहीं कर सकता, उसके द्वारा धर्मका अनुष्ठान कैसे सम्भव है और जो धर्महीन है, उसे सुख कहाँसे मिलेगा? सुखकी अभिलाषा सभी रखते हैं, परंतु सुख धर्मसे ही प्राप्त होता है। अतः चारों वर्णोंके मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने धर्मका पालन करना चाहिये। न्यायोपार्जित द्रव्यसे पारलौकिक कर्म करना चाहिये और उसीसे उत्तम देश, काल और पात्रमें विधि एवं श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। जो अपने धनसे माता-पितासे हीन बालकोंका यज्ञोपवीत और विवाह आदि संस्कार करवाता है, उसे अक्षय कल्याणकी प्राप्ति होती है।

गाय दुहनेमें बछड़ेका मुख पवित्र और फल गिरानेमें पक्षीकी चोंच पवित्र मानी गयी है। बकरे और घोड़ेका मुख पवित्र है। गौएँ पीठकी ओरसे पवित्र हैं, इसलिये उनका मूत्र, गोमय, दूध एवं दूधसे निर्मित पदार्थ—सभी पवित्र हैं। ब्राह्मणोंके चरण पवित्र हैं, अतः उनका स्पर्श करना चाहिये।

१. अहुत, २. हुत, ३. प्रहुत, ४. प्राशित तथा ५. ब्राह्महुत—ये पाँच यज्ञ शुभ बताये गये हैं। इनमें जपको अहुत यज्ञ कहते हैं। होम करनेको हुत यज्ञ कहते हैं। बलि वैश्वदेवको प्रहुत नामक यज्ञ कहते हैं। पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्ध आदि करना प्राशित यज्ञ है और ब्राह्मणोंका सत्कार करके उनको भोजन कराना ब्राह्महुत यज्ञ कहलाता है। इन पाँचों यज्ञोंका करनेवाला सद्गृहस्थ

श्रेष्ठ मनुष्य छोटी-छोटी बातोंके लिये शपथ न ले। व्यर्थ शपथ करनेवाला मनुष्य इहलोक एवं परलोकमें भी नष्ट होता है। माता, पिता एवं गुरुमें सद्गृहस्थको देवभावना रखनी चाहिये। ये तीनों ही प्रत्यक्ष देवता हैं तथा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। इनकी आज्ञाका पालन, सेवा-शुश्रूषा तथा पालन-पोषण यत्नपूर्वक करना चाहिये। जो सदा एकान्तमें रहनेवाला, देवताकी आराधनामें तत्पर,

[illegible]

सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी प्रीतिसे दूर रहनेवाला तथा स्वाध्याययोगमें मनको लगानेवाला और कभी किसी जीवकी हिंसा नहीं करता, ऐसे पुरुष निश्चय ही मोक्षके भागी हैं। जो गृहस्थ यज्ञके द्वारा देव-ऋणसे, अध्ययनके द्वारा ऋषि-ऋणसे और तर्पण-श्राद्धादिद्वारा पितृ-ऋणसे उऋण हो गया है, जो न्यायसे धनका उपार्जन करता है, तत्त्वज्ञानमें स्थित है, अतिथियोंको प्यार करनेवाला है तथा श्राद्धकर्ता और सत्यवादी है, वह गृहस्थ होकर भी इस जगत्में मुक्त हो जाता है। गृहस्थ पुरुष दीनों, अन्धों, दरिद्रों एवं याचकोंको विशेष रूपसे अन्नदान करके गृह-कर्मोंका अनुष्ठान करता रहे, तो वह सद्गृहस्थ कल्याणका भागी होता है। इस प्रकार सदाचारका पालन करनेवाले सद्गृहस्थपर भगवान् सदाशिव प्रसन्न होते हैं एवं उसका कल्याण करते हैं।



जीवनचर्याके करणीय और अकरणीय कर्म

(डॉ० श्रीचन्द्रपालजी शर्मा, एम०ए०, पी०एच०डी०)

मूल अंकोंमें नौ जहाँ सबसे बड़ा है, वहाँ सबसे अधिक शुभ भी है। यह मूल अंकोंका बड़ा भाई है। शुभ संख्याके लिये सात या नौ ही मान्य हैं। नौ संस्कृतके 'नव' शब्दसे बना है, जिसका अर्थ नवीन या नूतन अथवा नया है। अंकोंकी गणनामें नौ जहाँ भी अन्तमें होगा, उसके बाद नवीनता ही मिलेगी। यह परिवर्तनकी सूचना लेकर आता है। धर्मप्रधान भारतमें करणीय-अकरणीय, सफल-असफल, गोपनीय-प्रकाश्य, आवश्यक अथवा निन्दित आदि धार्मिक बातोंमें नौका विशेष महत्त्व है।

शरीरकी नौ अवस्थाएँ—धर्मका आधार शरीर है—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।' सभी प्रकारके धार्मिक कार्य शरीरके द्वारा ही होते हैं। शरीरकी भी नौ अवस्थाएँ हैं—(१) गर्भाधान, (२) गर्भवृद्धि, (३) जन्म, (४) बाल्यावस्था, (५) कुमारावस्था, (६) यौवन, (७) प्रौढ़ावस्था, (८) वृद्धावस्था एवं (९) मृत्यु। इन नौ अवस्थाओंमें—
Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shan
से पहला दो गर्भाधान एवं गर्भवृद्धि माताके उदरमें रहती

हैं। जन्मके साथ ही मनुष्यका सम्बन्ध पृथ्वीसे जुड़ता है। दस-बारह वर्षकी आयुतक बाल्यावस्था रहती है। इसके बाद पन्द्रह-सोलह सालकी उम्रतक किशोरावस्था या कुमारावस्था रहती है। इसके बाद यौवनका प्रवेश दिखायी देने लगता है, जो प्रायः पैंतीससे चालीस वर्षतक चलता है। इसके बाद लगभग पचपन-साठतक प्रौढ़ावस्था रहती है। वृद्धावस्था आनेके बाद मृत्युपर्यन्त बनी रहती है। अन्य अवस्थाओंमें परिवर्तन आता है, परन्तु वृद्धत्व अपरिवर्तनीय है। मृत्यु शरीरयात्राका अन्तिम अथवा नौवाँ पड़ाव है।

सामान्य धर्मके नौ भेद—महाभारतमें पितामह भीष्मने व्यक्तिके पालनके लिये सामान्य धर्मके नौ भेद बताये हैं—

अक्रोधः सत्यवचनं सविभागः क्षमा तथा।

प्रजनः स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एव च॥

आजिव भृत्यभरणं नवते सावर्वाणकाः।

घर आनेपर गृहस्थको नौ मंगलकारक करणीय बातोंका ध्यान रखना अपेक्षित होता है—(१) सौम्य मन, (२) सौम्य दृष्टि, (३) सौम्य मुख, (४) सौम्य वचन, (५) उठकर स्वागत, (६) कुशल पूछना, (७) प्रेमपूर्ण वार्तालाप, (८) सेवा तथा (९) जानेपर कुछ दूरतक साथ जाना अर्थात् सौम्य मन, सौम्य दृष्टि एवं सौम्यमुखसे सौम्य वचन कहते हुए उठकर अतिथिका स्वागत करे तथा उसके बाद कुशलक्षेम पूछकर स्नेहपूर्वक वार्तालाप करे। समीप बैठा हुआ अतिथि जब जाने लगे तो कुछ दूरतक अतिथिके पीछे-पीछे जाय।

नौ अविश्वसनीय—इन नौ-का विश्वास नहीं करना चाहिये—

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि ।

चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ॥

(१) स्त्री, (२) लम्पट, (३) आलसी, (४) डरपोक, (५) क्रोधी, (६) पुरुषत्वके अभिमानी, (७) चोर, (८) कृतघ्न और (९) नास्तिकका विश्वास करना अच्छा नहीं है। नारीके पेटमें गोपनीय बात छिप नहीं पाती। अतः विश्वास करके धोखा खाना पड़ेगा। लम्पट या धूर्त तो सदैव उलटा-सीधा ही बकते हैं। आलसीका क्या भरोसा, वह विश्वास देनेके बाद भी आलस्यमें डूबा रहे, डरपोकका क्या भरोसा, कब भाग खड़ा हो, क्रोधी कब काम बिगाड़ दे, पुरुषत्वके अभिमानी वास्तविकताको नहीं पहचान सकते, चोर तो स्वयं निकृष्ट जीव है, कृतघ्न तो अपने उपकारीका भी नहीं होता, वह अन्यकी क्या सहायता करेगा और नास्तिकका विश्वास करनेका अर्थ है—ईश्वरपर विश्वास न करना।

नवकुमारी, नवदुर्गा या नवशक्ति— भारतीय परम्परामें जब-जब पुरुषने अपनेको असहाय, निराश या हताश पाया है, तब-तब वह नारीकी शरणमें गया है। भले ही अपने अहंके कारण उसे अबला कहता रहा हो। अपनी असहाय अवस्थामें पुरुषने जिन देवियोंकी शरण ली है, उनको नवकुमारी, नवदुर्गा या नवशक्तिके नामसे जाना जाता है। इनकी पूजा-आराधनाके लिये वर्षमें चार बार नौ-नौ

दिनका समय नवरात्रके रूपमें निश्चित किया गया है। जिनमें दो नवरात्र विशेष प्रचलनमें हैं—विक्रम संवत्का प्रारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे होता है। अतः वर्षके प्रारम्भके नौ दिन और ठीक छह मास बाद आश्विन मासके शुक्लपक्षके नौ दिन नवदुर्गाओंके व्रत, पूजन, अर्चनके निमित्त हैं। नवकुमारियोंमें कुमारिका, त्रिमूर्ति कल्याणी, रोहिणी, काली, चण्डिका, शाम्भवी, दुर्गा और सुभद्रा नामकी नौ देवियाँ हैं। (शाक्तप्रमोद, कुमारीतन्त्र)

चैत्र एवं आश्विनके नवरात्रमें नौ दुर्गाओंकी पूजा की जाती है, उनके नाम शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायिनी, कालरात्रि, महागौरी एवं सिद्धिदात्री हैं। पुराणोंमें इन देवियोंको प्रभा, माया जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया और सर्वसिद्धिदा नामसे नौ शक्तियोंके रूपमें वर्णित किया गया है। देवी मूलतः भगवान् शिवकी शक्ति हैं, जिनका कोमल एवं भयंकर दो रूपोंमें वर्णन है। कोमल रूपमें कुमारिका, महागौरी, सिद्धिदा, जगन्माता, भवानी, पार्वती आदि नामोंसे सम्बोधित करते हैं और उग्र रूपमें काली, दुर्गा, चण्डी या चण्डिका, भैरवी आदि नाम प्रचलित हैं। वस्तुतः नवदेवी या नवदुर्गा शिव-पत्नीके ही विविध रूप हैं। कुछ नाम उनके कार्योंके आधारपर पड़े हैं और कुछ नाम उनको अपने पतिके परिवेशकी विभिन्नताके कारण मिले हैं।

वे हिमालयकी पुत्री हैं, अतः शैलपुत्री हैं। भगवान् शिवको तपस्या एवं ब्रह्मचर्यके बलपर प्राप्त करनेके कारण ब्रह्मचारिणी हैं। कण्ठमें चन्द्रमा स्थित होनेके कारण चन्द्रघण्टा हैं तथा त्रिविध तापयुक्त संसारको अपने उदरमें धारण करनेके कारण कूष्माण्डा हैं। स्कन्दकी माता होनेके कारण स्कन्दमाता हैं और जो कालके लिये भी कालके समान हैं, वे कालरात्रि हैं। देवताओंके कार्योंको भी सिद्ध करनेके कारण कात्यायिनी हैं और तपस्या एवं कान्तियुक्त गौरवर्णके कारण महागौरी हैं। सिद्धि एवं मोक्षको देनेवाली होनेके कारण सिद्धिदात्री हैं। वस्तुतः भगवान्की शक्ति ही उनकी पत्नीरूपमें

शरीरके नवद्वार—मनुष्यके शरीरमें नवद्वार या नवछिद्र हैं। शरीरमें दो नेत्र—गोलक, दो कर्णगह्वर, दो नासिकाछिद्र, एक मुख, एक गुदा और एक उपस्थ—ये नौ इन्द्रियद्वार या नव छिद्र हैं। साधना—पथके पथिक सदैव इन इन्द्रियद्वारोंकी पहरेदारीकी आवश्यकता बताते हैं। रूप, शब्द, गन्ध, स्वाद एवं स्पर्शकी आकांक्षा इनके द्वारा ही होती है और यह आकांक्षा ही मनको विचलित

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

करनेका मूल कारण है। शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध और रसमें—से एक आकर्षणके प्रति आसक्त होकर क्रमशः मृग, हाथी, कीट—पतंग, भ्रमर और मत्स्य या तो बन्धनमें पड़ जाते हैं या मृत्युके ग्रास बनते हैं किंतु मनुष्यको तो ये पाँचों ही आकर्षित करते हैं। वह पाँचों इन्द्रियोंसे पाँचोंका सेवन करता है, वह तो मारा ही जायगा—

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग-

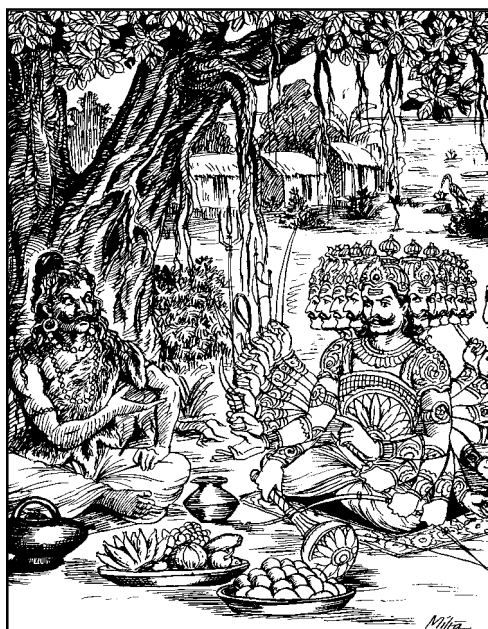
मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।

एकः प्रमादी स कथं न हन्यते

यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥

वस्तुतः ये नवद्वार शरीरकी विभिन्न प्रकारकी स्थूल गन्दगीको बाहर निकालनेके माध्यम हैं और शरीरस्थ पंचप्राण भी मृत्युके समय इन छिद्रोंसे ही बाहर निकलते हैं। इसी कारण योगीजन इन नवद्वारोंपर पहरेदारीकी बात करते हैं। इन नवद्वारोंको वशवर्ती बना लेना ही साधनाका मुख्य सोपान है।

नौसे विरोध उचित नहीं—समझदार व्यक्तिको नौ-
का विरोध नहीं करना चाहिये। सीताहरणमें रावणका
सहयोग करनेमें आना-कानी करनेवाले मारीचको जब



रावणने जानसे मारनेकी धमकी दी तो मारीच विचारकर
Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharm>

तब मारीच हृदयँ अनुमाना । नवहि बिरोधें नहिं कल्याना ॥
सस्त्री ममीं प्रभु सठ धनी । बैद बंदि कबि भानस गुनी ॥

शस्त्रधारी न जाने कब प्रहार कर दे, मर्मी हमारे किस गोपनीय रहस्यको खोल दे, स्वामी कब दण्डित कर दे, मूर्ख क्या अज्ञानता कर बैठे, धनवान्से कब सरोकार पड़ जाय, वैद्यसे शत्रुता तो प्राणघातक हो सकती है। कवि एवं भाट विरुदावली भी गा सकते हैं; किंतु कब निन्दापुराण लिख-बाँच दें, क्या पता तथा रसोइया विरोधी होकर कब क्या खिला दे?

शिष्यके नौ गुण—आज गुरु-शिष्य सम्बन्धोंमें

यदा-कदा कटुता देखनेको मिलती है, जिसका कारण यह है कि शिष्य बनाते समय गुरुओंको उनके गुणोंके परीक्षणका अवसर नहीं मिलता। भारतीय परम्परामें नौ गुणोंके होनेपर ही शिष्यत्व मिलना चाहिये—

अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ।

असत्त्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥

शिष्यको (१) अभिमानसे रहित, (२) किसीका अहित-चिन्तन न करनेवाला, (३) कार्यमें निपुण, (४) ममतारहित, (५) गुरुप्रेममें दृढ़, (६) कार्यमें जल्दबाजी न करनेवाला, (७) परमार्थज्ञानका इच्छुक, (८) दूसरेमें दोष न निकालनेवाला तथा (९) व्यर्थकी बात न करनेवाला—नौ गुणोंसे युक्त होना चाहिये। तभी अर्जुन, एकलव्य, शिवाजी—जैसे शिष्य पैदा हो सकते हैं।

नौ गोपनीय एवं नौ प्रकाश्य बातें—नौ ऐसी गोपनीय बातें हैं, जिनका प्रकट करना हितकर नहीं है— (१) अपनी आयु, (२) धन, (३) घरका कोई रहस्य, (४) मन्त्र, (५) मैथुन, (६) औषधि, (७) तप, (८) दान तथा (९) अपमान, इनका प्रकट होना अपमानजनक, हानिकारक, पीड़ादायक अथवा अनर्थकारी हो सकता है। नौ ऐसी बातें हैं जिनको प्रकट करना ही हितकर है—(१) ऋण लेनेकी बात, (२) ऋण चुकानेकी बात, (३) दानमें प्राप्त वस्तु, (४) विक्रय की गयी वस्तु, (५) कन्यादान, (६) अध्ययन, (७) वृषोत्सर्ग, (८) अर्पण, (९) कर्माचार, (१०) आनन्दित कथन, इत्यादि।

उत्तम स्वास्थ्य कैसे पायें ?

(डॉ० मधुजी पोद्दार, एम०डी०)

हर इन्सान जब मन्दिर जाता है या भगवान्की पूजा करता है तो प्रायः यह प्रार्थना करता है कि मुझे तन, मन और धनसे सुखी करो भगवान्! इस तन, मन, धनके सुखी होनेमें सभी कुछ आ जाता है, पर कुछ पानेके लिये कुछ करना पड़ता है। धनसे सुखी होनेके लिये इन्सान काम करता है, चाहे नौकरी करे या निजी व्यवसाय। मनसे सुखी होनेके लिये उसमें सहनशीलता, दया, सहिष्णुताके साथ-साथ क्रोध, ईर्ष्या, नफरत, बदलेकी भावना इत्यादिपर काबू पाना जरूरी है, जिन्हें मानवधर्मका लक्षण माना गया है एवं जिसके कारण इन्सान पशुसे भिन्न होता है; क्योंकि आहार, निद्रा, भय और मैथुनकी आवश्यकता तो पशुमें भी पायी जाती है—

आहारनिद्राभयमैथुनं

च

सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो

धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

अतः मानसिक सुख मिलता है आत्मसंयमसे, योगसे, प्राणायामसे, वेदोंके ज्ञानसे तथा धर्मका पालन करनेसे; जो आजके युगमें थोड़ा कठिन है, पर अगर हम चाहें तो कोशिश करके पा सकते हैं। सबसे ज्यादा जरूरी है एवं आसान भी है तनसे सुखी रहना; क्योंकि यह इन्सानके स्वयंके हाथमें है और कुछ सावधानियोंसे ही तनको स्वस्थ रखा जा सकता है तथा बीमारियोंको आनेसे रोका जा सकता है। ये सावधानियाँ मुश्किल नहीं हैं, इसके लिये सिर्फ अपने रोजमर्राके जीवनमें कुछ बदलावकी जरूरत है और यह बदलाव किया जा सकता है खान-पान एवं रहन-सहनमें बदलावसे; क्योंकि अगर शरीर स्वस्थ रहता है तो मन भी स्वस्थ रहता है, परिवार सुखी रहता है, समाज सुखी रहता है एवं समाजके सुखी रहनेसे ही हमारा पूरा देश तथा संसार सुखी रहता है। जब

जीवनमें स्वस्थ रहनेके लिये यौनसे सम्बन्धित बातोंका ध्यान रखना भी उतना ही जरूरी है, जितना खान-पान तथा रहन-सहनका।



(प्रो० डॉ० श्रीजमनालालजी बायती, एम०ए०, एम०कॉम०, पी०एच०डी०, डी०लिट०)

आजीविकाको सुचारु रूपसे चलानेके लिये व्यक्ति जो वृत्ति अपनाते हैं, उसे दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—सेवा तथा निजी व्यापार या अन्य धन्धा। सेवाको फिर उपविभागोंमें बाँटा जा सकता है—राजकीय सेवा, अर्ध राजकीय सेवा तथा निजी सेवा। सेवा कैसी भी हो, एक निश्चित समयके बाद उससे निवृत्ति पानी ही होती है, अवकाश लेना होता है। सेवाओंमें सेवानिवृत्तिकी आयु भी अलग-अलग होती है।

जब आप सेवानिवृत्तिके किनारेपर होते हैं तो आपको आनेवाले समयके लिये मनोवैज्ञानिक रूपसे तैयार हो जाना चाहिये। आपको ज्ञात है कि आपकी आमदनी कम हो गयी है या यह भी सम्भव है कि आपकी आमदनी कुछ समयके लिये बन्द ही हो जाय। यद्यपि सरकार सेवानिवृत्तिसे काफी पूर्व ही ऐसी व्यवस्था करती है कि आपको समयपर पेंशन मिल सके, फिर भी विलम्ब होनेकी सम्भावनासे इनकार नहीं किया जा सकता। सम्भव है, सेवावधिमें आपके कुछ अधीनस्थोंने आपके आदेशोंकी अवहेलना की हो या आपको उपयुक्त सम्मान न दिया हो या आपके प्रति या आपके कार्योंके प्रति उदासीनता बरती हो, आप इन सबको क्रमशः भूलनेका प्रयत्न कीजिये। यह भूलना ही आपको सन्तोष देगा, प्रसन्नता देगा। इसके दूसरी ओर यह भी हो सकता है कि अपने सर्विस कालमें आप अपने परिवारको पर्याप्त समय न दे पाये हों तो अब आप सपत्नीक तीर्थाटनके लिये निकल जाइये या घूमने निकल जाइये, जहाँ इच्छा हो रुक जाइये, देव-दर्शन कीजिये, प्राकृतिक छटा निहारिये। यदि आप मित्रोंसे मिलने भी जा सकें तो इसका भी लाभ उठाइये, इससे अनुभवोंका आदान-प्रदान होगा, विचार-विमर्श आगे बढ़ेगा तथा आपका जीवन प्रसन्नतासे भर जायगा।

अबतक आपने धन कमाया है, बच्चों-पौत्रोंके लिये खर्च किया है तो आपने परिवारमें भरपूर सम्मान पाया है, पर अब चूँकि वेतनकी जगह पेंशन मिलेगी तथा हो सकता

है कि वह विलम्बसे मिलनी शुरू हो तो आपको यदा-कदा उलाहना भी सुनना पड़ सकता है, कभी आप पानी माँगें और ध्यान न दिया जाय या विलम्ब हो जाय या जल लानेमें उदासीनता बरती जाय। बहन या पुत्री ससुरालसे आयी है तो आप अपनी इच्छाके अनुसार उसकी आवभगत नहीं कर सकते; क्योंकि अब आपको पुत्रोंपर तथा बहूरानियोंपर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थितिमें आपको सहनशीलताका विकास कर लेना चाहिये, दूसरोंकी सुविधाका ध्यान रखिये, उनके विचारोंको भी महत्त्व दीजिये। सेवानिवृत्तिके बाद आप अपनी इच्छाके अनुसार स्कूल या अस्पताल या कार्यशाला या सामाजिक संस्थाको चन्दा या दान नहीं दे सकते, आपको बच्चोंसे पूछना होगा। ये कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हैं, जिन्हें आपको अपनेमें विकसित कर लेना चाहिये। उलाहनोंको आप गम्भीरतासे न लें, तभी आप प्रसन्नचित्त और हल्के-फुल्के रह सकते हैं।

यदि आपकी जिम्मेदारियाँ पूरी हो गयी हैं तो आपके पास समय-ही-समय है। यदि पुत्रों तथा पौत्रों आदिके विवाह हो चुके हैं तो आप निश्चिन्त हैं, पर यदि ऐसा नहीं है तो पुत्रों-पुत्रियों, पौत्रों आदिके विवाहके लिये अब विशेष प्रयत्न कर सकते हैं, क्योंकि अब आप इन कामोंको अधिक समय देनेकी स्थितिमें हैं।

सेवानिवृत्तिसे पूर्वतक आप अपने कार्योंमें, आदतोंमें नियमित थे, पर अब आपको फुरसत मिल रही है, आप अधिक विश्राम कर सकते हैं, अधिक समय घूम सकते हैं, अच्छे-अच्छे ग्रन्थोंको पढ़ सकते हैं, निश्चिन्ततापूर्वक भगवान्की तरफ ध्यान लगा सकते हैं। यदि आप संयुक्त परिवारके सदस्य हैं, तो पुत्रोंके भोले-भाले, अबोध, प्यारे-प्यारे बच्चों या पड़ोसियोंके बच्चोंके साथ आप अपने समयका उपयोग कर सकते हैं, उनको पढ़ा सकते हैं, उनके साथ विनोद-चुहलबाजी कर सकते हैं।

परिवारके छोटे-मोटे कामोंमें हाथ बँटाइये। परिवारमें

यदि आप स्वस्थ और सक्षम हैं तो अर्थप्राप्तिके लिये अपनी प्रकृतिके अनुरूप कोई कार्य कर सकते हैं। आप समाजके किसी कार्यको सेवाभावसे कर सकते हैं, आप चाहें तो मानवोपयोगी संस्थाकी गतिविधियोंमें भाग लीजिये, उसके सदस्य बन जाइये या कार्यकारिणीके पदाधिकारी

ये सुखी रहनेके सहज, सरल एवं उपयोगी सूत्र हैं। यदि आपने इस प्रकारका दृष्टिकोण विकसित कर लिया, वृत्ति बना ली तो शेष जीवनमें आप सदैव प्रसन्नचित्त, हँसमुख, स्फूर्त तथा युवा बने रहेंगे।

टेंशनका मुख्य आधार अहंकार है। अहंकारी व्यक्ति स्वयंको कर्ता मानता है तथा दूसरोंकी उपलब्धियोंसे ईर्ष्या एवं डाह करता है। यदि सामनेवाला व्यक्ति थोड़ा भी

यह जगत् मनुष्येतर प्राणियोंके लिये भोगभूमि है और मनुष्यके लिये कर्म तथा भोगभूमि दोनों ही है—
कर्म प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस कइ सो तस फलु चाखा ॥

(रा०च०मा० २।२१९।४)

यह ध्रुव सत्य है कि इस विश्व ही क्या? अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके नियामक ईश्वर ही हैं। उनकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। तब तनावग्रस्त मनुष्योंका स्वयंको कर्ता मानना भ्रम ही है। वह सफल होनेपर स्वयंको दक्ष मानता है तथा विफल होनेपर दूसरोंको दोषी मानता है।

टेंशन कोई रोग नहीं है। ओढ़ी हुई मानसिकता है। विचारोंमें साम्य लानेसे ही इस मानसिकतासे मनुष्य उबर सकता है। क्षमा, सहिष्णुता, दया, धर्माचरण, सत्य आदिके अभावमें ही मनुष्य तनावग्रस्त रहता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

ध्यायतो विषयानुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

(गीता २।६२-६३)

अर्थात् असत् विषयोंका चिन्तन करनेवाले मनुष्यका उन विषयोंसे संग हो जाता है। उन विषयोंमें उसकी प्रगाढ़ आसक्ति हो जाती है। उस आसक्त मनुष्यके चित्तमें नाना प्रकारकी कामनाओंकी उत्पत्ति होती है, कामनाके अपूर्ण रहनेपर क्रोध पैदा होता है, क्रोधसे मूढ़ता (कार्याकार्यका विवेक लुप्त हो जाता है), आसक्तिजनित मोहसे स्मृतिमें भ्रम जन्म लेता है, जिसके कारण बुद्धिका नाश हो जाता है। फलस्वरूप वह असत् कर्मोंमें लिप्त हो जाता है।

अवधारणाओंको उद्घाटित किया है, जो किसी तनावग्रस्त व्यक्तिमें होती हैं। यह टेंशन (तनाव, क्रोध) ही समस्त प्रकारके दोषोंका जनक है; क्योंकि अहंकारी व्यक्तिकी ईश्वर-सम्बन्धी अवधारणा नष्ट हो जाती है तथा वह स्वयं ही कर्ता तथा भोक्ताके अभिमानको पोषितकर इस लोकमें तो क्रोधरूपी अग्निमें जलकर सबसे वैरभाव रखता ही है, मृत्यु (जड़ शरीरके त्यागने)-के पश्चात् भी नाना प्रकारके नरकोंमें गमन करता है।

संसारके जितने भी तनाव हैं, वे सभी उन मनुष्योंके लिये हैं जो धर्मपरायण नहीं हैं, ईश्वरपरायण नहीं हैं। वे संसाररूपी चक्कीमें पिसते रहते हैं।

समस्त सुख-शान्ति, आनन्दके सागर भगवान् हैं, जो उनको छोड़कर संसारके व्यक्तियों, वस्तुओं और उपलब्धियोंमें सुख तलाश रहे हैं, वे धानके भूसेको कूटकर चावल खोजनेका निरर्थक प्रयास कर रहे हैं। श्रीगरुड़जी महाराजसे श्रीकाकभुशुण्डिजी कह रहे हैं—समस्त ग्रन्थों और संतोंकी वाणियों तथा मेरा निजी अनुभव यह है—

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा । बिनु हरि भजन न जाहि कलेसा ॥

(रा०च०मा० ७।८९।५)

अन्यत्र भी—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥

(रा०च०मा० ३।३९।५)

श्रीहरिका भजन ही सार है। उसको छोड़कर शेष सब असार है। इस संसारकी उपलब्धियाँ मनुष्यको क्या सुख देंगी, जब उनका अस्तित्व ही स्वप्नवत् है। जीव उसी नित्य, सत्य, ईश्वरका नित्य अंश है। उसको छोड़ देनेसे जीवको कहीं भी आनन्द नहीं है।

तनाव इसी बातका है कि लोगोंके पास जो सुखसाधन हैं, वे मेरे पास क्यों नहीं हैं? अथवा जो मेरे पास सुखसाधन हैं, वे किसी औरके पास नहीं होने चाहिये, परंतु प्रारब्धके अधीन ही सम्पूर्ण संसार चल रहा है। इसे कोई बदल नहीं सकता। जब यह १०० प्रतिशत सत्य है कि हानि-लाभ, यश-अपयश और जीवन-मरण विधाताके हाथमें है तो फिर तनावका लबादा ओढ़कर ईर्ष्या, द्वेष तथा

हाथमें है तो फिर तनावका लबादा ओढ़कर ईर्ष्या, द्वेष तथा हिंसाका आगमन क्या जल ?

[illegible]

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।

हानि लाभु जीवन्तु मरन्तु जसु अपजसु बिधि हाथ ॥

(रा०च०मा० २।१७१)

यदि मनुष्य टेंशनफ्री-जीवन चाहते हैं तो उन्हें निश्चित ही श्रीहरिकी एकान्तिक शरण ग्रहणकर भजन करना चाहिये एवं समस्त प्रकारकी कामनाओं, इच्छाओं तथा संकल्प-विकल्पका त्यागकर शान्तभावसे जीवन-यापन करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्णने एक स्थानपर श्रीमद्भागवतमें कहा

है कि जो सदैव प्रसन्नचित्त रहता है तथा विषम परिस्थितियोंमें भी धर्म एवं धैर्यको नहीं छोड़ता, वह महान् संत है; क्योंकि उसे मुझपर पूर्ण विश्वास है तथा उसके चित्तको संसारके विषयोंने दग्ध नहीं किया है। जीवकी अखण्ड यात्रा आनन्दकी खोजमें है, उसे इस लम्बी यात्रामें कभी भी ईश्वरचरणोंमें समर्पण किये बिना, निःस्पृह भजन किये बिना आनन्द नहीं मिल सकता है। हम भ्रमसे भवनों, धन-सम्पत्तिको अपना मानते हैं, परंतु इन्होंने कभी यह नहीं कहा कि हम तुम्हारे हैं,

किंतु भगवान् कहते हैं कि 'हम भक्तनके भक्त हमारे।'।



आदर्श जीवनका मूल मन्त्र—‘तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः’

(श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)

भारतीय संस्कृतिने मानवके चरमोत्कर्षको सदैव प्राथमिकता दी है। मानवजीवनकी पूर्णता मूलतः दो पक्षोंपर आधारित है। वे पक्ष हैं, अभ्युदय और निःश्रेयस। जहाँ अभ्युदय मनुष्यके जीवनका बाह्य अथवा ऐहिक पक्ष है, वहीं निःश्रेयस है उसका आन्तरिक या पारलौकिक पक्ष। अभ्युदय प्रवृत्तिमूलक है और निःश्रेयस निवृत्तिप्रधान—‘यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः’ (महर्षि कणाद)। प्रवृत्तिमार्ग साधनाके क्षेत्रमें निष्काम कर्मका द्योतक है। निवृत्तिपथमें ज्ञान एवं उपासनाकी प्रधानता है। अभ्युदयका सम्बन्ध पुरुषार्थचतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके प्रथम तीन सोपानों अर्थात् त्रिवर्गकी उपलब्धिसे है तथा निःश्रेयससे सीधा अभिप्राय अन्तिम भाग अर्थात् मोक्षसे है। जहाँ अभ्युदय मानवमात्रकी भौतिक, लौकिक अथवा सांसारिक समृद्धि एवं सुख-साधनोंका पुंजीभूत रूप है, वहीं निःश्रेयस मनुष्यको भूमाकी स्थिति, जहाँ अक्षय, अनन्त आनन्द ही आनन्द है, तक पहुँचानेका लक्ष्य है।

उपर्युक्त दोनों पक्षोंके समन्वयको हमारे ऋषियोंने अभीष्ट प्राप्ति साधन माना है। ज्ञान, कर्म तथा उपासनाकी प्रवहमान त्रिपथगा मानव-जीवनमें सम्यक् सिद्धि तथा चरम एवं परम लक्ष्यकी प्राप्तिहेतु अभ्युदय एवं निःश्रेयसके संगमकी ओर उन्मुख होती है। आर्ष प्रज्ञासे विभूषित भारतीय ऋषियोंने वेदों, उपनिषदों, गीता आदि धर्मग्रन्थोंमें दोनों पक्षोंके मधुर सामंजस्यका विवेचन विभिन्न प्रकारसे किया है। उदाहरणार्थ ‘ईशावास्योपनिषद्’के प्रथम मन्त्रमें ही सात्त्विक भोग एवं निरहंकारी त्यागकी महत्तापर विशेष बल दिया गया है—‘ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥’

उपर्युक्त मन्त्रके तीन शब्दों अर्थात् ‘तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः’ के निहितार्थकी संक्षिप्त व्याख्या निम्नलिखित पंक्तियोंमें करनेकी चेष्टा की गयी है। हिन्दुओंके वैयक्तिक जीवन तथा आदर्श सामाजिक व्यवस्थामें भोग और त्यागका अद्भुत समन्वय उपर्युक्त तीन शब्दोंमें समाहित है।

मनुष्यमें दो सहज प्रवृत्तियाँ हैं—एक भोगकी तथा दूसरी त्यागकी। जीवनकी सार्थकता भी इन दोनों प्रवृत्तियोंके समुचित संचालन एवं समन्वयपर निर्भर है। हिन्दूसमाजमें भोग एवं त्यागकी, परस्पर आदान-प्रदानकी और विचारविनिमयकी उदात्त एवं सहिष्णु भावना सदैव प्रतिष्ठित रही है। प्रकृतिमें जैसे दिन-रातका समन्वय है और मानवजीवनमें जैसे सोने-जागनेका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, ठीक उसी प्रकार हमारी संस्कृतिमें भी भोग और त्यागके स्वाभाविक सम्बन्धको समुचित महत्त्व दिया गया है। ऐसे समन्वयका ही समानार्थक शब्द है ‘अपरिग्रह’, जिसे जीवनकी सफलताका एक प्रमुख साधन माना गया है। समाजकी सम्यक् व्यवस्था भी इन्हीं दो प्रवृत्तियोंके सामंजस्यपर मुख्यतया निर्भर रहती है। अपरिग्रहका व्रत भी जो समदृष्टि अथवा कर्तापन तथा भोक्तापनकी भ्रमपूर्ण भावनासे ऊपर उठनेकी दशा है, वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवनके सामंजस्यकी ओर इंगित करता है। तभी तो समत्वके दृढ़ संकल्पके आधारपर ही वेदमें कामना की गयी है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(ईशा० २)

अर्थात् जगत्के कर्ता, धर्ता, हर्ता परमेश्वरका सब कुछ समझकर अन्यथाबुद्धि, नास्तिक वृत्ति अथवा निराशाकी भावनाको त्यागकर सौ वर्षोंतक जीनेकी कामना करनेवाला व्यक्ति कर्मोंमें लिप्त नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्णने भी इसी आशयकी पुष्टि अपने शब्दोंमें इस प्रकार की है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २।४७)

अर्थात् हे अर्जुन! तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।

‘त्यक्तेन भुज्जीथाः’ का वैयक्तिकके अतिरिक्त एक दूसरा सामाजिक पक्ष भी है, वह है समता एवं बन्धुत्वपर आधारित सामाजिक दायित्वका निर्वाह। सृष्टिकी सभी वस्तुओंपर जीवधारियोंको अपने भरण-पोषणका अधिकार है। अतएव सौभाग्यसे जो धनी-मानी अथवा साधनसम्पन्न हैं, उनका यह पवित्र नैतिक एवं सामाजिक दायित्व है कि वे निर्धनों और साधनविहीन व्यक्तियोंके जीवननिर्वाहकी भी चिन्ता करें तथा उनके लिये भी जीवनकी मूलभूत आवश्यकताओंकी पूर्तिहेतु समुचित साधनोंकी व्यवस्था करें। तभी तो दान-दक्षिणाकी भारतीय जीवनदर्शनमें इतनी

अर्थात् हे प्रभो! न तो मुझे राज्य-सुखकी कामना है और न ही स्वर्गप्राप्तिकी अभिलाषा। मैं जन्म लेकर पुनः सांसारिक भोगकी इच्छा भी नहीं करता। मैं तो दुःखसे दग्ध प्राणिमात्रके क्लेशोंका निवारण करना चाहता हूँ।

अभिवादनका स्वरूप-रहस्य और फल

(विद्यावाचस्पति डॉ० आर०वी० त्रिवेदी 'ऋषि', वैद्याचार्य, आयुर्वेदशास्त्री)

विद्याबहुल, विश्वगुरु, धर्मप्राण देश भारत अध्यात्म-चेतना, संस्कृति और सदाचारका सदासे केन्द्र रहा है। भारतीय संस्कृतिमें अभिवादन, प्रणाम, आज्ञापालन एवं हरिस्मरणका बड़ा महत्त्व है। यह प्रवरजनों और मान्यजनोंके प्रति श्रद्धा, लगाव या झुकावका प्रतीक है। हमारी संस्कृतिमें मानव ही क्या जड़-जंगम तथा अन्य जीव भी आदरके पात्र हैं; यहाँ वृक्षों, नदियों, सरोवरों, शैलखण्डोंको भी देवता मानकर पूजा जाता है और नमन किया जाता है, अपनी आस्था और श्रद्धा समय-समयपर दिखायी जाती है तथा उनसे मनोभिलषित कामनाएँ प्राप्त की जाती हैं। घरके, समाजके सभी वृद्धों, ज्ञानवृद्धों, आयुवृद्धों, अतिथियों, साधु-सन्तोंको अपनी समाज-कुलपरम्पराके अनुसार प्रणाम, अभिवादन और पूजनके द्वारा, शुद्ध आस्थासे हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर, चरणस्पर्श करके, चरणरज या चरणोदक लेकर प्रणाम्योंसे विविध प्रकारके आशीर्वाद तथा मनौतियाँ प्राप्त की जाती रही हैं।

प्रणाम-अभिवादन, चरणवन्दनकी रीति आजकी नहीं, युगों-युगोंकी है। प्रणाम एक छोटी-सी प्रक्रिया है, जीवनरूपी क्षेत्रमें आशीर्वादका अन्न उगानेका बीजमन्त्र है, सुर-असुर, नाग, किन्नर तथा गन्धर्व सब-के-सब इस वशीकरण मन्त्रके वशमें रहते हैं। प्रणाम एवं अभिवादन मानवका सर्वोत्तम सात्त्विक संस्कार है। मूलतः प्रणाम स्थूल शरीरका

न होकर अन्तरात्मामें स्थित प्रभुको किया जाता है।

मुसलिम भाइयोंमें तथा अन्य वर्गके लोगोंमें कमर झुकाकर पृथ्वीतक सीधा हाथ ले जाते हुए फिर मस्तकतक ले जाते हुए बन्दगी या जुहार किया जाता है, जिसका अभिप्राय यही हो सकता है कि आपकी चरणधूलिको हम विनम्रतासे मस्तकसे लगाते हैं। सेनाके सैनिक सावधानीसे पैर फटकारते हुए बाँह मोड़कर अँगुली सीधी करके कनपटीतक ले जाते हैं। इसे सैल्यूट कहते हैं।

बिना हाथ जोड़े, बिना मस्तक झुकाये, बिना मुँहसे बोले प्रणाम नहीं होता। एक हाथसे, हाथकी अँगुलीसे या हाथमें छड़ी लेकर, सिरस्त्राणसहित या हाथमें हाथ लेकर प्रणाम करना प्रणाम नहीं कहलाता। ये सभी प्रकारान्तरसे अवहेलना या हास्यास्पद हैं।

महर्षि व्याघ्रपादके मतानुसार एक हाथसे अभिवादन करनेसे जीवनभरका पुण्यार्जन समाप्त हो जाता है—

जन्मप्रभृति यत्किञ्चित् सुकृतं समुपार्जितम्।

तत्सर्वं निष्फलं याति एकहस्ताभिवादानात्॥

बायें हाथसे नमस्कार करने और लेनेसे प्रथम कर्ता फिर स्वीकारकर्ताकी हानि अवश्यम्भावी है।

देवालय या देवविग्रहके समक्ष हँसी, मजाक या गाली-गलौज, क्रोध आदिसे वातावरणको दूषित नहीं करना चाहिये। धूम्रपान, मद्यसेवन करके वहाँ नहीं जाना

ही होता है।

अपने समान लोगोंको दोनों हाथ जोड़कर, वक्षःस्थलके समक्ष लगाकर, अंजलि बाँधकर, मस्तक झुकाकर अभिवादन करना चाहिये।

अपनेसे बड़ोंके आनेपर देखते ही खड़ा हो जाना चाहिये और आगे बढ़कर अभिवादन करना चाहिये। कोई विशेष स्थिति या परिस्थिति न हो तो उनके पासतक आनेकी प्रतीक्षा न करके स्वयं उनके पासतक जाना चाहिये। उन्हें अपने पास अभिवादन या चरणस्पर्शहेतु नहीं बुलाना चाहिये। पास आनेपर उन्हें आदरसे बिठाना चाहिये और सत्कार करना चाहिये। कभी भी पूज्य या प्रवरको सोते या लेटे होनेकी स्थितिमें अभिवादन या चरणस्पर्श नहीं करना चाहिये। न इधर-उधर उन्हें खिसकाकर या हाथ-पैर खींचकर प्रणाम या अभिवादन करना चाहिये। अपने अन्दर श्रद्धा, आस्था और अर्पण भाव हो तो अभिवादनका आपको आशाजनक फल प्राप्त होगा।

प्रणाम, अभिवादन प्रणम्यके सामनेसे ही करें, दायें-बायें या पीठ पीछेसे न करें। साथ ही पूर्वपरिचय न हो तो नाम, गोत्र, स्थान, पितादिका नाम बोलकर दूरसे ही जूते-चप्पल उतारकर तथा शिरस्त्राणके बिना हाथोंकी अंजलि बाँधकर प्रणाम किया जाना चाहिये, किंतु स्त्री सिर ढककर ही प्रणाम करे।

देवविग्रहको, आचार्यको, साधुको और अन्य पूज्य सम्मान्य जनोंको, देवालयको या देवप्रतिमाको, संन्यासीको, त्रिदण्डी स्वामीको, साधु-महात्माओंको देखकर जो प्रणाम नहीं करता: वह प्रायश्चित्तका भागी होता है—

अष्टांग-प्रणामकी अभिक्रियामें जानु, पाद, हाथ, उर, बद्धि, सिर, वचन और दृष्टिका संयोग होता है—

जानुभ्यां च तथा पदुभ्यां पाणिभ्यामुरसा धिया ।

शिरसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥

देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम् ।

नमस्कारं न कुर्वीत प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ॥

यदि स्नान न किये हों, शरीर शुद्ध न हो, अशुचि अवस्था हो तो प्रवरजनोंका स्पर्श न करे।

स्नान करते समय, दन्तधावनके समय, शौचादिके समय, तैलाभ्यंगके समय, शव ले जाते समय प्रणाम करनेकी आवश्यकता नहीं। श्मशानमें, कथास्थलमें, देवविग्रहके सम्मुख केवल मानसिक प्रणाम करे। यदि स्वयं भी इसी स्थितिमें हो तब भी मानसिक प्रणाम करे।

अपनेसे छोटी आयुके बच्चोंको प्रणामका स्नेहमयी वाणीसे आशीर्वादात्मक उत्तर दे।

क्रोधवन्तं मदोन्मत्तं नमस्कारोऽपि वर्जयेत्॥

घमण्डीको, क्रोधीको, मदोन्मत्त या पागलको भी नमस्कार न करे—

दूरस्थं जलमध्यस्थं धावन्तं धनगर्वितम्।

क्रोधवन्तं मदोन्मत्तं नमस्कारोऽपि वर्जयेत्॥

दम्भ, झूठ और हिंसारहित वेदाभ्यासी; तपस्या, सन्तोष एवं भक्तियुक्त ब्राह्मणका आशीर्वाद तो क्या दर्शन ही लाभप्रद है।

वृद्धजनोंके नमस्कारसे प्रभुको नमस्कार हो जाता है। प्रवर तथा प्रणम्य कई प्रकारके होते हैं, आयुमें कम हों, किंतु ज्ञान तथा तपस्यामें एवं पदमें बड़े हों तो प्रणम्य हैं। त्याग एवं ज्ञानके अनन्तर विद्या और उसके पश्चात् वर्णका विचार किया जाता है। अवस्थाका विचार तो मात्र अपने ही वर्णमें होता है।

शुकदेवजी ज्ञान तथा तपस्याकी मूर्ति थे। इसी कारण उनके पिता श्रीवेदव्यासजीने उन्हें अभ्युत्थान दिया और प्रणाम किया। इसी प्रकार श्रीगणेशजीने अपने माता-पिताकी सेवा करके उन्हें प्रसन्न किया और देवताओंमें प्रथम पूज्य, अग्रगण्य और गणनायकका स्थान प्राप्त कर लिया।

चरणोंके प्रति विभिन्न क्रियाओंसे हम अपने अनेक भाव मौन रहकर भी व्यक्त कर देते हैं। चरणस्पर्शसे आदर-भाव, चरण पकड़कर अथवा चरणोंमें सिर झुकाकर क्षमायाचना और समर्पणभाव दर्शाये जाते हैं। इसी प्रकार चरण दबाकर सेवाभाव, क्षमायाचना अथवा विनतीका भाव प्रकट किया जाता है। किसीके आगमनपर चरण धोकर प्रसन्नता तथा आदरभावका प्रदर्शन होता है। गुरुनानकदेवने अपने शिष्य अंगददेवजीको जब गद्दीका भार सौंपा तब श्रीफल, दक्षिणा तथा उत्तरीय देकर चरणस्पर्श और नमस्कार किया था।

रोमन कैथोलिक ईसाई समुदायके सर्वोच्च धर्मगुरु पोप गुडफ्राइडेके एक दिन पूर्व होली थर्सडे सर्विसके अवसरपर १२ व्यक्तियोंके चरण धोते हैं; क्योंकि ईसामसीहने सूलीपर जानेसे पूर्व रातको अपने शिष्योंके पैर धोये थे।

महर्षि मृकण्डुको पता चला कि उनके पुत्रकी आयु मात्र छः माह शेष है तो उन्हें चिन्ता हुई और उन्होंने अपने पुत्र मार्कण्डेयका यज्ञोपवीत करारकर उपदेश दिया—वत्स! तुम किसी उत्तम द्विजको कहीं देखो तो उन्हें विनयपूर्वक प्रणाम करना। बालक मार्कण्डेयने बात मान ली और

उनकी प्रणाम करनेकी आदत पड़ गयी। हर आगन्तुक ब्राह्मणको वे नमस्कार करने लगे। एक दिन सप्तर्षि उस मार्गसे निकले, बालक मार्कण्डेयने पता लगते ही उन्हें प्रणाम-निवेदन किया। अब क्या था, सातों ऋषियोंने एक साथ 'दीर्घायुर्भव' की झड़ी लगा दी तो मार्कण्डेयजी चिरजीवियोंकी श्रेणीमें आ गये। आशीर्वाद प्राप्त हो गया अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम—इन सातोंके साथ ही आठवाँ नाम चिरजीवियोंमें मार्कण्डेयका भी जुड़ गया।

प्रणामकी महिमाको दर्शानेवाली एक अन्य कथा है, युधिष्ठिरने पादत्राण, रथ और अस्त्र त्यागकर पितामह भीष्मके पास जाकर महाभारतयुद्धमें विजयकी चाहसे उनको प्रणाम किया। भीष्मने कहा—तुम्हारे शील और विनयने मुझे भी परास्त कर दिया, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, 'विजयी भव' तुम्हारी जीत होगी, इसमें सन्देह नहीं, यह मेरा आशीर्वाद है।

पितामह भीष्मसे आशीर्वाद लेकर महाराज युधिष्ठिर आचार्य द्रोणके पास गये और प्रणाम करके उनकी परिक्रमा की तथा अपने हितकी बात पूछी तो आचार्य द्रोण बोले, महाराज युधिष्ठिर! यदि युद्धका निर्णय कर लेनेसे पहले तुम मेरे पास न आये होते तो मैं तुम्हें सर्वथा पराजित होनेका शाप दे देता। अब मैं तुम्हारे आनेसे प्रसन्न हूँ, तुमने मेरा बड़ा सम्मान किया, अब मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, युद्धमें विजय प्राप्त करो।

इसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर अपने कुलगुरु कृपाचार्य एवं महाराज शल्यके पास भी गये और उन्हें भी अभिवादन करके प्रसन्न किया और विजयका आशीर्वाद प्राप्त किया।

अब प्रणामके अभावमें भी उदाहरण देखें—

महाराज दिलीप बहुत समयतक निःसन्तान ही रहे तो चिन्तित मनसे अपने कुलगुरु वसिष्ठजीके पास गये। प्रणामाभिवादनके पश्चात् वसिष्ठजीने अपनी दिव्य दृष्टिसे देखकर बताया—तुम एक बार स्वर्गसे लौट रहे थे तो मार्गमें कामधेनुके मिलनेपर तुमने उसे प्रणाम नहीं किया। कामधेनुने इस कारण तुम्हें निःसन्तान होनेका शाप दे दिया कि तुमको मेरी सन्तानकी आराधना-सेवाके बिना निःसन्तान ही रहना पड़ेगा। अतः कामधेनुकी पुत्री नन्दिनी जो मेरे आश्रममें है, तुम उसकी सेवा करो तो तुम्हें यशस्वी पुत्रकी प्राप्ति होगी। राजाने निष्ठासे गोसेवा

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

की। साथ ही रानी सुदक्षिणाने भी प्रातः-सायं गौका



पूजन-वन्दन किया और सेवा की, जिसके प्रभावसे उन्हें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई।

प्रणाम, अभिवादन तथा सेवाके अभावमें गुरु और पितृजनोके अभिशापसे सन्तान, सौभाग्य और ऐश्वर्यका अभाव हो जाता है। इस अभावकी पूर्ति भी उन्हें प्रसन्न करनेसे होती है, देखें—

कण्वाश्रममें प्रणयमुग्धा शकुन्तलाको महर्षि दुर्वासाने शाप दे दिया, तू जिसके ध्यानमें बैठी है, वह तुझे भूल जायगा। सखियोंको शापका पता लग गया, अनुनय-विनय तथा प्रणाम-निवेदनसे उन्होंने दुर्वासाको प्रसन्न कर लिया। दुर्वासाने कहा—जब अँगूठी देख लेगा, तब वह स्मरण कर लेगा।

प्रणामकी महत्ता निरूपित करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि वह मानवशरीर व्यर्थ है, जो सज्जनों, गुरुजनों और देवविग्रहके सम्मुख नहीं झुकता—

ते सिर कटु तुंबरि समतूला । जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥

(रा०च०मा० १।११३।४)

वह सिर कड़वी तुम्बीके समान है, जो श्रीहरि और गुरुजनोंके चरणोंमें नहीं झुकता।

प्रणामाभिवादनकी महिमा बड़ी महनीय है, परंतु स्त्रीको किसी परपुरुषका चरण-स्पर्श नहीं करना चाहिये।

श्रीमद्भागवत (६।१८।३३)-के अनुसार पति ही स्त्रीका
Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/d>
परम और अध्व इष्टदेव है—

पतिरेव ही नारीणां दैवतं परमं स्मृतम्।

पतिके अतिरिक्त दूसरे सभी पुरुषोंको बिना स्पर्श किये ही विनम्रताके साथ हाथ जोड़कर नमस्कार करना चाहिये अथवा भूमिपर बैठकर अष्टांग प्रणामका अर्धरूप ही अपनाना चाहिये। क्योंकि—

वसुन्धरा न सहते कामिनीकुचमर्दनम् ।

अर्थात् स्त्रीकुचोंका भार पृथ्वी सहन करनेमें असमर्थ है। अतः स्त्रीको साष्टांग प्रणामका निषेध है।

श्रीमद्भागवत (४।३।२२)-के अनुसार प्रणामका रहस्य समझाते हुए स्वयं शंकरजी सतीजीसे कहते हैं—
प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ।
प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गृहाशयायैव न देहमानिने ॥

अर्थात् हे सुमध्यमे ! अभ्युत्थान, विनम्रता, प्रणामादि सज्जन लोग आपसमें जो करते हैं, शरीर और शरीरपर अभिमान करनेवाले अहंकारको नहीं करते, बल्कि वे अन्तर्यामीरूपसे सबके अन्तःकरणोंमें स्थित परमपुरुष वासुदेवको ही प्रणामादि करते हैं ।

जिस प्रकार समस्त नदियोंकी एकमात्र गति अथवा आश्रय सागर ही है, उसी प्रकार अखिल साधनाओंका अन्तिम लक्ष्य परमात्मा ही है।

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।

सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

अर्थात् आकाशसे गिरा जल जिस प्रकार सागरकी ओर जाता है, उसी प्रकार सभी देवोंके लिये किया गया नमस्कार भी केशव (ईश्वर)–को ही प्राप्त होता है।

विज्ञानके मतसे दृष्टिपात करें तो प्रत्येक मानवपिण्डमें विद्युत्की आकर्षणशक्ति होती है, जो ऋणात्मक एवं धनात्मक दो प्रकारकी है। इसलिये धनका धनसे और ऋणका ऋणसे स्पर्श होनेसे प्रणम्य और प्रणामकर्ता दोनोंकी निगेटिव-पॉजिटिव धाराएँ मिलती हैं, जिससे गुरुजनोंके सद्गुण प्रणामकर्ताके शरीरमें प्रवेश करते हैं। यही गुरुजनोंके द्वारा सिर या पीठपर वरदहस्त रखने, सूँघने या पुचकारनेसे अन्दर प्रवाहित विद्युत्-शक्तिका संचार प्रणत-जनको ऊर्जान्वित कर देता है।

प्रणामनिवेदनके सन्दर्भमें मनुमहाराजका कथन है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।

MADE WITH LOVE BY Avinash/Shalini

चाहिये। यह नित्यचर्याका सर्वश्रेष्ठ कर्म है।

इन प्रश्नोंका हल ढूँढ़ते हुए विद्वानोंके विचारमें ये

द्रव्य भी आहारके गुणोंको प्रभावित करता है। अनीति, अनाचार, चोरी, तस्करी, गबन तथा लूटसे प्राप्त धन पापभावसे ग्रसित होनेके कारण भोजनको उच्छिष्ट बना देता है। ऐसे धनसे तैयार किया गया भोजन तामसी गुणोंको उत्पन्नकर आहारीके तन और मनको दुष्प्रभावित कर देता है। यह दुष्प्रभाव आहारीके आचार-व्यवहार,

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

चालचलन, चिन्तन-मनन और कर्ममें स्पष्ट दिखायी पड़ता है। महाभारतमें भीष्मपितामहका चरित्र इसका प्रबल प्रमाण है। अतः मेहनत और ईमानदारीसे अर्जित द्रव्यसे तैयार भोजन ही सात्त्विक और आरोग्यप्रद होता है।

कालशुद्ध

आहार-ग्रहण करना स्वास्थ्यके लिये लाभप्रद होता है।

ग्रहण करना चाहिये, इसके मध्य भोजन नहीं करना चाहिये। यह विधि अग्निहोत्रके समान है—

सागं पातार्पणायामणनं श्वत्विभोक्षितम् ।

नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ।

पातःकाल और मायं—दोनों भोजनोंके बीच

से-कम दो याम या प्रहर (एक याम या प्रहर तीन घण्टेका होता है)-का अन्तर रहे। इससे अन्नरसका परिपाक भलीभाँति होता है। इससे अधिक विलम्ब करनेपर पूर्वसंचित बलका क्षय होता है।

याममध्य न भाक्तव्य यामयुग्म न लङ्घयत् ।

याममध्य रसात्प्राप्तियामयुग्माद्बलक्षयः ॥

अवसर वह है, जब व्यक्ति मल-मूत्र-त्यागके उपरान्त अपनेको हलका महसूस करे, ठीकसे डकार आ जाय, इन्द्रियोंके निर्मल होनेसे मन प्रसन्न हो जाय, भूख लग जाय और भोजनके प्रति रुचि जाग्रत् हो जाय।

जलपान करना चाहते हैं तो कलेवा और भोजनके बीच एक पहरका अन्तर अवश्य रखा जाय अन्यथा अध्यशनकी पीड़ा हो सकती है। अस्वस्थ व्यक्ति वैद्य-डॉक्टरके परामर्शानुसार भोजनकालका निर्णय करें। पूर्व आहार जीर्ण हो (पच) जानेपर ही अपर आहार ग्रहण करना चाहिये।

देश (ऋतुचर्या)

सर्गत स्थानविशेषकी

कालमें उत्पन्न द्रव्योंके गुणोंका अध्ययनकर उनका अहंरम

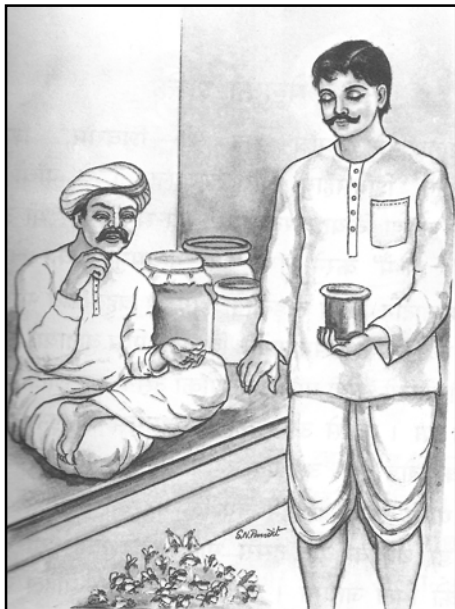
सम्मिलित किये जाने सम्बन्धी निर्णय आते हैं। पश्चिमी देशों में जहाँ अधिकांश समय शीत ऋतु रहती है, वहाँ वैसी ही वस्तुओंका बारहों मास सेवन करते रहनेसे उनके निवासियोंकी पौष्टिक आहारकी आवश्यकताकी पूर्ति हो जाती है। भारत-जैसे देश में जहाँ छः ऋतुएँ होती हैं और ऋतुके अनुसार भोज्य पदार्थोंके गुणोंमें भी परिवर्तन होता रहता है, वहाँ आहारके लिये उपयुक्त द्रव्योंका चयन, उनके संस्कार और ग्रहणविधिमें विविधता रखना आवश्यक हो जाता है। इसे ध्यानमें रखकर ही मनीषियोंने ऋतुके अनुसार आहार-विहारका प्रावधान ऋतुचर्याके अन्तर्गत किया है। ऋतुभेदसे वात, पित्त और कफका न्यूनाधिक्य होनेके कारण शारीरिक तथा मानसिक अवस्थामें परिवर्तन आता है। चरकसंहिताके सूत्रस्थानमें ऋतुचर्या-विधानके अन्तर्गत निर्दिष्ट आहार-विहारके नियमोंका अनुपालन अवश्य किया जाना चाहिये।

वक्रता बनाये

और भोजनगृह—क्षेत्रकी शुद्धि आवश्यक है; क्योंकि प्रत्येक स्थानका वायुमण्डल, वातावरण और पर्यावरण हमारे मनको भी प्रभावित करता है। इन दोनों स्थानोंकी शुद्धि स्वास्थ्यके लिये वैज्ञानिक और लाभदायक है। प्राचीन परम्पराके अनुसार चौका व्यवस्थामें चार प्रकारकी शुद्धियाँ—क्षेत्रशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, कालशुद्धि और भावशुद्धिका समुच्चय रहा। यह स्थान प्रकाशयुक्त, शुद्ध, हवादार और गोबरसे लिपा होता था। इस कमरेमें अनधिकृत व्यक्तिका प्रवेश निषिद्ध रहता था। केवल एक वर्ण और गुणके व्यक्ति ही पाकसामग्री छूनेके अधिकारी होते थे। चौकेके भीतर जो वैज्ञानिकता है, उसे लोग भूलते जा रहे हैं। आज जूते-चप्पल पहने कोई भी गृहिणी या उसकी सहेली, महरी आदि चौकेमें आती-जाती है। पार्टियोंमें भोजन किसी भी सड़कपर नालीके किनारे, बिना किसी सफाई और शुद्धताके, किसीके द्वारा भी तैयार किया जाने लगा है। इसी तरह बाजारोंमें, गलियोंमें, नालीके किनारे खड़े चाट-

पकाड़ोके ठलाके पास भिनाभिनाती मक्खियाँ, मच्छर,

धूलके बीच खाता हुआ व्यक्ति पर्यावरणकी दूषिताको भूल पाचनमें सुविधा रहे।



जाता है। वह यह भी ध्यानमें नहीं रखता कि ऐसे वातावरणमें बैक्टीरिया, कीटाणु हमारे शरीरमें प्रवेशकर रुग्णता पैदा करते हैं। श्मशान-जैसी अपवित्र और उपवन-जैसी पवित्र जगहमें भोजन करनेसे पाचन-क्रियामें होनेवाले अन्तरको समझकर शुद्ध स्थानमें भोजन पकाने एवं ग्रहण करनेकी आदत डालनी चाहिये।

मात्रानिर्धारण

आहारकी मात्राका निर्धारण आहारीकी शरीररचना, आयु, स्वास्थ्य और भोज्य-पदार्थोंके गुणतत्त्वके आधारपर किया जाना चाहिये। आहारकी मात्रा पचाने (जठराग्नि)-की क्षमतापर निर्भर करता है। जिस व्यक्तिके शरीरमें वात, पित्त, कफ—त्रिदोष सम हों, जठराग्नि ठीक हो, रसादि धातुओंका ठीक निर्माण हो रहा हो, मल-मूत्रकी क्रिया सम हो, आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न हो, उस व्यक्तिका आहार हितकर एवं पथ्य होता है।

उपर्युक्त स्थिति तभी सम्भव है, जब मनुष्य स्निग्धपदार्थ—तेल, घी, मलाई आदि जिन्हें आयुर्वेदमें गुरुपदार्थ कहा गया है, सीमित मात्रा अर्थात् भूखकी तीव्रतासे आधा लें तथा सभी समय सुपाच्य भोज्य पदार्थ जैसे अन्न, हरी सब्जियाँ आदि तृप्तिपर्यन्त सेवन करें।

आहारकी मात्राका निर्धारण इस दृष्टिसे करें कि आमाशयका आधा भाग ठोस आहारसे, एक चौथाई द्रवपदार्थसे पूरित हो तथा शेष भाग खाली रहे, ताकि

क्रियाशुद्धि

क्रियाशुद्धिसे तात्पर्य वे सभी कर्तव्य या क्रियाएँ हैं, जो आहारके लिये द्रव्योंके चयन, पाकसंस्कार और ग्रहण करनेहेतु व्यक्तिद्वारा सम्पन्न की जाती हैं।

आहारग्रहणविधि

भारतीय संस्कृतिमें आहारग्रहण करनेहेतु एकल एवं सहभोज—दोनों परम्पराएँ प्रचलित रही हैं। दोनों ही परम्पराओंमें भोजनस्थलके शुद्ध होनेपर विशेष बल दिया गया है। आधुनिक परम्परा इससे विपरीत सिद्धान्तका पालनकर जाने-अनजानेमें अपने शरीरको रोगी बनानेकी दिशामें चल रही है। वर्तमानमें जहाँ-कहीं भी जूते-चप्पल पहने, बिना हाथ-पैर मुँह धोये किसी भी दिशामें खड़े या बैठकर, किन्हीं भी व्यक्तियोंके साथ, किन्हीं भी व्यक्तियोंद्वारा तैयार और परोसे गये आहारविन्यासको आदर्शपद्धति और आधुनिक शिष्टाचारकी संज्ञा दी जाती है।

भारतीय संस्कृति तो आधुनिक तथाकथित सहभोजको गिद्धभोज कहकर उसका तिरस्कार करती है और उसके स्थानपर पूर्ण वैज्ञानिक सिद्धान्तोंको प्रतिपादित करते हुए स्वच्छ, पवित्र, प्रकाशमय, धूल और कीटाणुमुक्त स्थानपर जूते-चप्पल और शरीरमें धारण किये भारी अधोवस्त्रोंको उतारकर, हाथ-पैर तथा मुखको जलसे साफकर, लकड़ीके पाटे या आसनपर सुखासनमें बैठकर साफ भोजनपात्रमें रखे पाकको पहले भगवान्को समर्पितकर शान्त और प्रसन्नचित्त दशामें भोजन करनेका पूरा विधान शास्त्रोंमें प्रस्तुत किया गया है। सहभोजकी व्यवस्थाहेतु भी नियम निर्देशित किये गये हैं। इन विधानोंमें प्रमुख विधान इस प्रकार हैं—

१-स्नानादिके बाद ही भोजन करें—पूर्वाचार्योंके अनुसार मल-मूत्र त्यागनेके बाद प्रातः शीतल जलमें अच्छी तरहसे स्नानकर सन्ध्या, नित्याचन समाप्त करनेके अनन्तर भोजन करना चाहिये।

भोजनसे पूर्व हाथ-पैर मुख धोनेसे जहाँ बाह्य गन्दगी दूर होती है, वहीं शीतलता आती है, श्वासगति सम होती है और आयु बढ़ती है।

हस्तौ पादौ तथैवास्यमेषा पञ्चाद्रता मता।

आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥

२-पूर्वाभिमुख होकर भोजन करें—भोजन करते समय पूर्वमुख होनेसे आयु बढ़ती है और दक्षिणकी ओर

स्वाहा और आचमन करें। भोजनसामग्रीसे बेरके बराबर पाँच ग्रास तैयारकर इन मन्त्रोंको कहते हुए मौन होकर आत्मस्वरूपको पंचप्राणाहुति दें—ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा और ॐ समानाय स्वाहा। इसके बाद हाथ धोकर भोजनको परमात्माका प्रसाद मानकर यथाविधि ग्रहण करें।

११-भोजनकालमें ध्यान रखें—[१] भोजनको प्रसाद मानकर उसकी प्रशंसा करें। यदि भोजन नमकरहित, चरपरा, खट्टा या आपकी रुचिके अनुकूल न हो तो भी भोजनकी आलोचना न करें। क्रोध करने या भोजन त्यागनेसे मन और शरीर दोनोंको क्षति पहुँचती है, जबकि आनन्दभावसे प्राणरूपी स्वादरसका रसास्वादन करते रहनेसे भोजन बल और पराक्रममें वृद्धि करता है। कहा गया है—

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।

दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।

अपूजितं तु तद् भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्॥

[२] आहारको न अधिक जल्दी, न अधिक देरसे, न बोलते हुए, न हँसते हुए अपने आहारपात्रमें ही मन और दृष्टि लगाकर मौन होकर ग्रहण करें। भोजनके बीच बोलने या हँसनेसे ग्रास श्वासनलिकामें फँस जानेसे संकट पैदा कर सकता है। बात करनेसे मुँहके अन्दर बननेवाली लार जो भोजन पचाने और निगलनेमें सहायक होती है, कम बननेसे पाचनमें व्यवधान उत्पन्न होता है। साथ ही मुँह सूखनेसे ग्रासको निगलनेके लिये बार-बार पानीके घूँट पीने पड़ते हैं।

[३] प्रत्येक ग्रासको अच्छी तरह चबाकर महीन करनेके बाद ही दूसरा ग्रास लें। इससे ग्रास आसानीसे आहारनलिकासे होकर आमाशयतक पहुँच सकेगा और आँतोंको इसे चूर्ण करनेमें मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। आयुर्वेदके अनुसार एक ग्रासको बत्तीस बार चबाना चाहिये। सोलह बार एक दाढ़से और सोलह बार दूसरी ओरकी दाढ़से चबाना चाहिये, इससे दाँत और मुँहके स्नायु पुष्ट होते हैं।

[४] भोजन करते समय स्पर्शदोष या दृष्टिदोषसे बचना आवश्यक है। विज्ञानसम्मत मत है कि स्पर्शसे एकके शरीरसे दूसरेके शरीरमें रोग संक्रामित होते हैं। केवल रोग ही नहीं, स्पर्शसे शारीरिक और मानसिक वृत्तियोंमें भी हेर-फेर हो जाता है। प्रत्येक व्यक्तिकी अपनी विशिष्ट वृत्ति होती है। अतः समान वृत्तिके लोगोंका छुआ या दिया अन्न सुरक्षित होता

है। शास्त्रोंमें नीच, अपवित्र, पापी, चाण्डाल और विजातीय आदिका छुआ अन्न ग्रहण करनेका निषेध है। साथ ही एक ही वर्णके मनुष्यका स्पर्श किया गया अन्न ही ग्रहण करें। पश्चिमके प्रसिद्ध वैज्ञानिक फ्लामेयिनका स्पष्ट मत है कि प्रत्येक व्यक्तिमें एक आकाशीय द्रव या शक्ति होती है, जो मस्तिष्कसे प्रारम्भ होकर मनोवृत्तियोंके साथ मिलकर शरीरके स्नायुपथसे प्रवाहित होकर हाथकी अँगुलियोंके पोरोंतक, आँखकी दृष्टिमें तथा पैरकी एड़ीतक पहुँचती है। इसका सबसे अधिक प्रभाव हाथकी अँगुलियोंद्वारा ही प्रकट होता है। अतः सत्पात्रका ही अन्न ग्रहण करें। इसी तरह दृष्टिमें भी मनुष्यकी आकाशीय शक्तिका प्रभाव रहता है, शास्त्रीय विचार कहते हैं—

पितृमातृसुहृद्वैद्यपुण्यकृदहंसबर्हिणाम् ।

सारसस्य चकोरस्य भोजने दृष्टिरुत्तमा॥

अर्थात् पिता, माता, सुहृद्, वैद्य, पुण्यात्मा, हंस, मयूर, सारस और चकवेकी दृष्टि भोजनपर पड़ती है तो उत्तम है। इसके ठीक विपरीत नीच, दरिद्र, भूखे, पाखण्डी, स्त्रैण, रोगी, मुर्गा, सर्प और कुत्तेकी विषदृष्टि होनेसे अन्न संक्रामित होकर अजीर्ण रोग उत्पन्न कर सकता है। यथा—

हीनदीनक्षुधार्तानां पाखण्डस्त्रैणरोगिणाम्।

कुक्कुटाहिशुनां दृष्टिर्भोजने नैव शोभना॥

कदाचित् दृष्टिदोष हो जाय तो उसके निवारणार्थ निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर उसके अर्थका चिन्तन करनेसे भोजन शुद्ध हो जाता है। यथा—

अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः।

इति सञ्चिन्त्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न बाधते॥

अर्थात् अन्न ब्रह्माका रूप है और अन्नका रस विष्णुरूप है तथा भोक्ता महेश्वर हैं। इस प्रकारका चिन्तन करते हुए भोजन करनेपर दृष्टिदोष नहीं होता। अन्य स्थानपर कहा गया है कि हनुमान्जीका स्मरण करनेसे भी दृष्टिदोषका नाश होता है। यथा—

अञ्जनीगर्भसम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम्।

दृष्टिदोषविनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम्॥

[५] जलग्रहणका प्रमाण— भोजनकालमें आवश्यकता पड़नेपर ही कुछ घूँट जल ग्रहण करें। अधिक जल पीनेसे तथा बिलकुल ही न पीनेसे अन्नका परिपाक नहीं होता। इसलिये पाकाग्नि बढ़ानेके लिये बार-बार थोड़ा जल पीना चाहिये। यथा—

क

महापुरुषोंके पावन चरित

अवधूतश्रेष्ठ भगवान् श्रीदत्तात्रेय एवं उनकी दिनचर्या

(स्वामी श्रीदत्तपादाचार्य भिषगाचार्य, ए०बी०एम०एस०)

श्रीदत्तात्रेयजीको नमस्कार है—

दत्तात्रेयं शिवं शान्तं इन्द्रनीलनिभं प्रभुम्।

आत्ममाधारतं देवं अवधूतं दिगम्बरम्॥

उपनिषदों, पुराणों, तन्त्रग्रन्थों इत्यादिमें श्रीदत्तात्रेयका ज्ञान-योगनिधि, विश्वगुरु, सिद्ध-सिद्धेश्वर, आदिगुरु, अवधूतकुलशिरोमणि, सर्वत्र समदर्शी, योगपति, यतिश्रेष्ठ, महाविष्णु, लोकनाथ, शान्तात्मा, महाप्रभु इत्यादि नामोंसे उल्लेख किया गया है। शाण्डिल्य-उपनिषद्में श्रीदत्तात्रेयको 'निर्गुण ब्रह्माका सगुण-साकार-स्वरूप' कहा गया है। दत्तात्रेय-उपनिषद्में भगवान् ब्रह्माको उपदेश करते समय भगवान् विष्णु स्वयंको दत्तात्रेयस्वरूप बताते हुए दत्तमन्त्रको तारकमन्त्र कहते हैं और उस मन्त्रकी जपसाधना करनेको विशेषतः सूचित करते हैं।

पुराणग्रन्थोंमें वर्णन है कि ब्रह्माके प्रिय मानस-पुत्र अत्रिने विवाहके बाद ही वनमें जाकर उत्कट तपस्याद्वारा विश्वकी एक महाशक्तिको सुपुत्ररूपमें पृथ्वीपर अवतरित करना चाहा। धर्मपत्नी अनसूयाने स्वपतिका अनुसरण किया। अत्रि-अनसूयाके उत्कट तप एवं उनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् त्रिदेव उनके घर सुपुत्ररूपमें अवतरित हुए।

भगवान्ने कहा—'अहं तुभ्यं मया दत्तः' मैं तुम्हें स्वयंको पुत्ररूपमें दान देता हूँ। दानवाचक शब्द 'दत्त' है और तपोमूर्ति अत्रिके सुपुत्र 'आत्रेय' ज्ञानरूप हैं। अतः दत्तात्रेय त्याग एवं ज्ञानके अवतार हैं—दत्त+आत्रेय=दत्तात्रेय।

श्रीमद्भागवत (२।७।४) में कहा है कि—

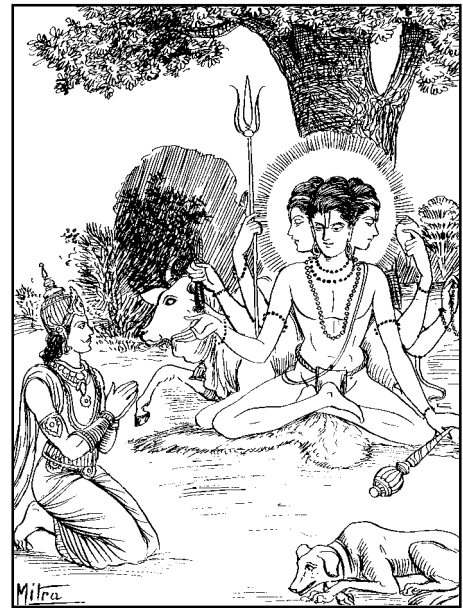
अत्रेयपत्यमभिकाङ्क्षित आह तुष्टो

दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः ॥

भगवान् श्रीदत्तात्रेयने अवतार लेकर किस प्रकार धर्म एवं समाजका पुनः संस्थापन किया, इस विषयमें विष्णुधर्मोत्तरपुराण, ब्रह्मपुराण इत्यादिमें विस्तृत वर्णन है।

भगवान् ब्रह्माके मानसपुत्र एवं सप्तर्षियोंमें परिगणित महर्षि अत्रिको स्वायम्भुव मन्वन्तरमें ब्रह्माके ज्ञाननेत्रसे उत्पन्न कहा गया है। अत्रि माने त्रिगुणातीत चैतन्य,

अनसूया माने पराप्रकृति, इनके सृजन हैं भगवान् श्रीदत्तात्रेय। वे केवल महायोगी एवं महाज्ञानी नहीं थे, अपितु आत्मविद्याके उपदेशकोंमें उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ था। श्रीमद्भागवत (६।८—१६) में उन्हें योगसाधकोंकी विघ्नोंसे रक्षा करनेवाले 'योगनाथ प्रभु' कहा है। उन्होंने सती मदालसाके पुत्र अलर्कको योग्य देखकर योगसिद्धि, योगिचर्या, निष्कामबुद्धि



इत्यादिका उपदेश देकर परम योग प्रदान किया था।

राजा ययातिके पुत्र यदुपर भगवान् दत्तात्रेयकी असीम अनुकम्पा हुई थी और उन्होंने यदुको चौबीस गुरुओंसे प्राप्त शिक्षाका उपदेश दिया था। अवधूतशिरोमणि दत्तात्रेयजीने राजा यदुको बताया कि मैंने चौबीस गुरुओंसे शिक्षा ली है, तुम उनके नाम सुनो—(१) पृथिवी, (२) वायु, (३) आकाश, (४) जल, (५) अग्नि, (६) चन्द्रमा, (७) सूर्य, (८) कबूतर, (९) अजगर, (१०) समुद्र, (११) पतंग, (१२) मधुमक्खी, (१३) हाथी, (१४) मधु निकालनेवाला, (१५) हरिण, (१६) मछली, (१७) पिंगला वेश्या, (१८) कुररपक्षी, (१९) बालक, (२०) कुँवारी

कन्या, (२१) बाण-निर्माता, (२२) सर्प, (२३) मकड़ी और (२४) भृंगी कीट। दत्तात्रेयजीने पुनः बताया कि मैंने पृथिवीसे धैर्य और क्षमाकी सीख ली है, वायुसे निर्लिप्त रहना सीखा है, आकाशसे आत्माकी अस्पृश्यताकी सीख ली है, जलसे पवित्रताकी सीख ली है, अग्निसे निर्दोषताका गुण सीखा है, कलाओंके घटने-बढ़नेपर भी चन्द्रमाके यथावत् रहनेके समान आत्मा भी ह्रास-वृद्धिसे रहित है—यह चन्द्रमासे मैंने सीखा है, सूर्यसे अविकृतिका ज्ञान सीखा है, कबूतरसे अनासक्ति सीखी है, अजगरसे प्रारब्धके बलका ज्ञान सीखा है, समुद्रसे गाम्भीर्यकी शिक्षा ली है, पतंगसे रूप एवं भोगोंसे होनेवाली मृत्युका ज्ञान लिया है, मधुमक्खीसे असंग्रहकी वृत्ति तथा सार वस्तुका ग्रहण सीखा है, हाथीसे मोहजनित भ्रम बन्धनका हेतु है—यह शिक्षा ली है, मधु निकालनेवालेसे लोभका परिणाम सीखा है, हरिणसे गान बन्धनका हेतु है—यह सीखा है, मछलीसे स्वाद बन्धनका हेतु है—यह सीखा है, पिंगला वेश्यासे निराशा वैराग्यका हेतु है—यह सीखा है, प्रिय वस्तुका संग्रह दुःखका कारण है—यह कुरर पक्षीसे सीखा है, बालकसे मानापमानसे रहित सहज वृत्ति सीखी है। कुमारी कन्यासे एकान्तवासकी शिक्षा ली है, बाण बनानेवालेसे एकाग्रता सीखी है, सर्पसे अनिकेतत्वकी शिक्षा ली है, मकड़ीसे सृष्टि एवं लयकी शिक्षा ली है और भृंगीकीटसे ध्यानकी एकाग्रता सीखी है।

असुरराज हिरण्यकशिपुके भक्तपुत्र प्रह्लादको भगवान् दत्तात्रेयने परम वैराग्य एवं सन्तोषका महोपदेश प्रदानकर उसका ज्ञानमार्ग प्रशस्त किया था। हैहयवंशी राजा कार्तवीर्यको भगवान् दत्तात्रेयने प्रसन्न होकर सहस्रबाहु, स्वधर्मसेवन, समग्र भूमण्डलपर विजय, त्रिलोकप्रसिद्ध अवतारी वीरपुरुषद्वारा मृत्यु इत्यादि वर दिये थे।

भगवान् श्रीदत्तात्रेयने पृथ्वीपर अवतरित होकर लीला-रूपमें साधकजीवनका अभिनय किया। उन्होंने अपने पिता महर्षि अत्रिकी आज्ञासे गौतमीवनमें दीर्घकालपर्यन्त उत्कट तपस्याद्वारा परमतत्त्वकी उपासनाकर परमसिद्धि प्राप्त की थी। गौतमीवनका तपस्यास्थान 'आत्मीर्थ' नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस स्थानको ब्रह्मपुराणमें दत्तात्रेयतीर्थ भी कहा गया है। उन्होंने लीलाहेतु शिष्यभाव धारण किया था।

उनका सद्गुणप्रदेश था कि जो व्यक्ति शिष्यत्वभाव रखकर सरल, विनम्र एवं मुमुक्षु होकर समग्र जगत्को

गुरुरूपमें देखता है, वह साधनापथपर अग्रसर होकर जगद्गुरु एवं विश्वगुरु बन सकता है। (श्रीमद्भा० ११।९—११)

तन्त्रशास्त्रमें भगवान् दत्तात्रेयको विकाररहित, संसारमें रहते हुए जलकमलवत्, संसारबाह्य, ज्ञानसागर होते हुए भी उन्मत्तवत् आचरण करनेवाले, अव्यक्तलिंग एवं अव्यक्त आचारसम्पन्न, परम अवधूत तथा अवधूतश्रेष्ठ कहा गया है। मध्वाचार्यने अपने ग्रन्थ पराशरमाध्वमें भगवान् दत्तात्रेयकी परमावधूत-अवस्थाका वर्णन करते हुए उन्हें 'अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्ति' अर्थात् पागल न होनेपर भी पागल-जैसा आचरण करनेवाले कहा गया है। दत्तात्रेयस्तोत्रमें उन्हें महोन्मत्त कहा है। अद्वैततत्त्वका परमोच्च उपदेश कार्तिकस्वामीको देते समय वे अवधूतगीतामें कहते हैं कि 'प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः' अर्थात् ऐसा परमज्ञानका मेरा उपदेश भी एक प्रकारका प्रलाप ही है। दत्तात्रेयोपनिषद्में उन्हें उन्मत्तानन्द एवं पिशाचज्ञानसागर कहा गया है।

मार्कण्डेयपुराणमें ऐसी कथा है कि जब असुरराज जम्भासुरने स्वर्गपर आक्रमणकर देवताओंको परास्तकर भगा दिया तब देवताओंने भगवान् दत्तात्रेयके पास जाकर सहायता माँगी। दत्तगुरुने अपनी अवधूती मस्तीसे देवताओंपर कृपा और मार्गदर्शनकर उन्हें युद्धमें जिता दिया और पुनः स्वर्गप्राप्ति करवा दी।

भगवान् दत्तात्रेयका अवतार सत्ययुगमें हुआ और वे एक ही देह एवं एक ही भावसे पृथ्वीपर महाप्रलयपर्यन्त रहेंगे तथा जीवोंका कल्याण करते रहेंगे। इन दयालु देवका स्मरण करते ही ये स्मर्तृगामीदेव प्रकट होकर भक्तजनका कल्याण कर देते हैं—'स्मरणमात्रतः आगमात्मनः।'

भगवान् शिव एवं भगवती पार्वतीके सुपुत्र कार्तिकेयको स्वात्मसंवित्का महा उपदेश अवधूतश्रेष्ठ भगवान् दत्तात्रेयद्वारा अवधूतगीताके रूपमें प्राप्त हुआ था। महर्षि सांकृतिको अवधूतके लक्षण, अवधूतीस्थिति एवं परमोच्च अवधूतज्ञान भगवान् दत्तात्रेयकी असीम अनुकम्पासे ही प्राप्त हुआ था।

महर्षि जमदग्नि एवं माता भगवती रेणुकाके सुपुत्र वीर भार्गवराम (परशुराम)-को परमोच्च योग एवं ज्ञान भगवान् दत्तात्रेयकी कृपासे ही प्राप्त हुआ था। इसके विषयमें त्रिपुरारहस्य ग्रन्थमें विस्तारसे कहा गया है।

भगवान् दत्तात्रेयने योगी गोरक्षनाथको परम योग और सहजसमाधिज्ञानका उपदेश दिया था, इसके विषयमें

प्रवचनकी समाप्तिपर उनकी फूसकी बनी झोपड़ीमें

पुनः सत्संगका रंग जमा ।

श्रीमहाराजजीका तीर्थाटन और सत्संग, चिन्तन, मनन और साधन वर्षोंतक इसी प्रकार चलता रहा। इसी यात्रा-क्रममें आनन्दरसमें डूबे श्रीमहाराजजी संवत् १९७२ के आषाढ़में पहली बार रामघाट (अनूपशहर) गंगातटपर पहुँचे। रामघाटकी सुरम्य वनस्थली, गंगातटका मनोहर दृश्य और वसुन्धराकी अब्धुत दीप्ति देखकर आपका मन मुग्ध हो गया। आपने श्रीमहादेवजीका दर्शन करके इमलीवाली कुटीमें आसन लगाया। कुटीमें प्रेम-रसानन्दकी अनुभूति करते हुए आप चान्द्रायण आदि अनेक व्रत भी चलाने लगे। चिदानन्द-सिन्धुमें आप निमग्न रहने लगे।

इन दिनों महाराजजी दिनभर तो सिद्धासन लगाये बैठे रहते थे, रात्रिमें भी नहीं लेटते थे। जब कभी बैठे-बैठे थक जाते तो कुहनियोंके बल आगेकी ओर झुककर थोड़ा-सा विश्राम कर लेते थे। इस प्रकार वर्षोंतक आप बिना लेटे ही विश्राम करते रहे।

स्त्रियोंके सम्पर्कसे दूर रहनेका आपका नियम था। आप मानते थे कि 'वर्जयित्वा स्त्रियः सङ्गं कुर्यादभ्या-
समादरात्।' आपने कह रखा था कि यदि कोई स्त्री दृष्टिके समक्ष आयेगी तो मैं इस स्थानको त्यागकर अन्यत्र चला जाऊँगा।

आप समाधिमें इतना लीन रहते कि क्षणभरकी भी बहिर्मुखता खलती। एक कौर भी उठाकर मुखमें रखना आपको भारी प्रतीत होता। पलकतक गिरानेमें आलस्य लगता। अन्नाहार तो छोड़ ही दिया था, ब्रतोंका ही अधिकतर अनुष्ठान चलता रहता था। इस प्रकार बहुत दिनोंतक कठोर साधना चलती रही। जन-कोलाहलसे दूर रहकर आप एकान्तमें साधना करते रहते। इसके लिये कई बार आपको स्थान भी बदलना पड़ा।

ब्रह्मनिष्ठ विरक्त सन्त और परमहंसके श्रुति-लक्षण
आपमें प्रकट हो उठे—

***शान्ता दान्ता उपरतास्तितिक्षवः समाहिता
आत्मरतय आत्मक्रीडा आत्ममिथुना आत्मानन्दाः प्रणवमेव
परं ब्रह्मात्मप्रकाशं शून्यं जानन्तस्तत्रैव परिसमाप्ताः ॥

॥ निर्विकल्पसमाधिना स्वतन्त्रो यतिश्चरति स
संन्यासी स मुक्तः स पण्डितः स योगी स परमहंसः ॥

सोऽवधूतः स ब्राह्मण इति ॥

श्रीमहाराजजीकी साधनाकी सुगन्ध धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगी। उस सौरभसे आकृष्ट होकर लोग आपके पास पहुँचने लगे। नाना प्रकारके भक्तोंका ताँता लगने लगा। अच्छे भी आते बुरे भी, सत्पुरुष भी आते, चोर और डाकू भी। कोई धूप-दीप-नैवेद्यसे आपकी षोडशोपचार पूजा करता, कोई आपपर नागांजलि चढ़ाता। एक बार एक सिंह उधर आ गया। लोग डरे तो महाराजजीने कहा—‘भैया, डरनेकी बात नहीं। वह चामुण्डा देवीके दर्शन करनेके लिये आता है। दर्शन करके चला जायगा।’ चला भी गया वह।

डाकूको अनूठी प्रेरणा

एक बार गर्मियोंमें एक डाकू सरदार आपके दर्शनके लिये पहुँचा। उसपर दस हजार रुपयेका इनाम था। पेड़के सहारे बन्दूक टिकाकर महाराजजीको प्रणाम करने आया था। हालचाल पूछनेपर खुल पड़ा—‘महाराजजी! डाका डालने जा रहा हूँ।’

‘एक बात मानेगा?’

‘क्या महाराज?’

‘देख, स्त्रियोंको मत छूना।’

‘ठीक है महाराज ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि स्त्रियोंको हाथ नहीं लगाऊँगा।’

एक जमींदारके यहाँ उसने डाका डाला। लूटका माल लेकर जब गाँवसे दो मील आ गया तो उसने देखा कि उसके साथी जमींदारकी लड़कीको पलंगसहित उठाकर ला रहे हैं। देखते ही गुर्गिया—‘इसे क्यों लाये हो? इसे वापस करना होगा।’

साथी बोले—‘अब वहाँ जानेसे हम सब मारे जायँगे।
गाँववाले इकट्ठे होकर हमें खतम कर देंगे।’

‘चलो; मैं चलता हूँ’!

उसे पलंगसहित गाँवपर लौटाकर डाकू-दल लौट आया। डाकू सरदार जब डेरेपर लौटा तो पश्चात्तापसे उसका चित्त व्यथित होने लगा। सोचने लगा कि हमारा कैसा अधम जीवन है। लोग रोते-चिल्लाते, तड़पते हैं और हम उनकी छातीपर चढ़कर उनका धन लूटते हैं, हमारे साथी उनकी स्त्रियोंका अपमान करते हैं।

Arma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sharma
आत्मग्लानिसे उसका चित्त भर गया। उसका हृदय-

यह अभ्यासका ही खेल है कि शुद्ध चिदाकाशरूप यह देह दृढ़ताका अभ्यास होनेसे भूलके कारण आधिभौतिक रूपमें पिशाच-जैसा खड़ा हो गया है। अतः सतत इसके विपरीत अभ्यास करानेकी आवश्यकता है। शिथिल अभ्याससे

अभ्यासकी तीन श्रेणियाँ हैं—

१-स्थूल शरीरसे अपनेको भिन्न समझना। इस अभ्यासकी पुष्टि होनेपर सूक्ष्म शरीरमें आत्मत्वका अभिमान हो जाता है।

२-उसके उपरान्त शब्दादि विषयोंमें असंगताका अनुभव करना। इस अभ्यासद्वारा दृष्टि सूक्ष्म शरीरसे हटकर कारण शरीरमें स्थित हो जाती है।

३-फिर सुख और दुःखसे भिन्नताका अनुभव करना। इस अभ्याससे दृष्टि अन्तःकरण-चतुष्टयसे हटकर शुद्ध आत्मा में स्थित हो जाती है।

अभ्यास और वैराग्यके बिना जीवन व्यर्थ है। सत्संग करे और अभ्यास न करे तो क्या लाभ है? वह तो वैसा ही है जैसे कोई रामायण तो पढ़े, किंतु रामभक्त न हो अथवा श्रीमद्भागवतका पारायण तो करे, किंतु कृष्णभक्त न हो। निरन्तर अभ्यास करते रहने और वासनाओंका पूर्णतया नाश कर देनेपर ही अनुभवकी प्राप्ति होती है। केवल शास्त्र पढ़नेसे कुछ नहीं होता। वासनाके रहते चित्तमें शान्ति नहीं आ सकती। वासनारहित चित्त ही परमतत्त्वके चिन्तनका अधिकारी होता है। निरन्तर अभ्यास करते रहनेसे ही वासनाओंका निर्मूलन होता है और तत्त्वकी उपलब्धि होती है। वासनाओंके उच्छेदके लिये विषयोंसे सर्वदा वैराग्य रखे और सर्वदा भगवदाकार वृत्ति रखे। संयमसे दो-चार विषयोंका रोग छूट सकता है। सम्पूर्ण विषयोंका राग तो भगवत्स्वरूपसे राग हुए बिना नहीं जा सकता। अभ्यासका ही प्रभाव है कि माँ-बहनके समीप रहनेपर भी काम-भावना नहीं होती; क्योंकि माँ-बहनका भाव दृढ़ होता है।

दिव्य अमृतमय सदुपदेश

महाराजजी जिह्वाके स्वादको सारे अनर्थोंकी जड़ मानते थे। कहते थे कि मैं जब राजा कृष्णचन्द्रकी पाठशालामें पढ़ता था तो एक दिन वहाँके विद्यार्थियोंने रसोइयेको इसीलिये पीटा कि उसने उन्हें खिचड़ी बनाकर नहीं दी थी। तबसे मैंने यह बात गाँठ बाँध ली कि जिह्वाका स्वाद ही सारे अनर्थोंकी जड़ है—‘जिते रसं जितं सर्वम्’।

अतः मैंने रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियपर विजय प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया; क्योंकि जो इन दोनोंको जीत लेता है, वही सर्वजित् है।

शुद्धिके सम्बन्धमें प्रश्न करनेपर श्रीमहाराजजी कहते थे कि असत्य, हिंसा और व्यभिचारके त्यागसे शरीर शुद्ध होता है। भगवन्नामजपसे वाणी शुद्ध होती है। दान करनेसे धन शुद्ध होता है और धारणा तथा ध्यानसे अन्तःकरण शुद्ध होता है। आपका कहना था कि वाणीमें चार दोष हैं—(१) आज्ञा देनेके स्वरमें बोलना, (२) चिल्लाकर बोलना, (३) अश्लील शब्द बोलना और (४) कटु बोलना। उसमें पाँच गुण भी हैं—(१) हितकर बोलना, (२) थोड़ा बोलना, (मित भाषण), (३) शान्त रहना, (४) मीठा, मधुर बोलना और (५) प्रिय बोलना। वाणीके दोषोंको दूरकर गुणोंका विकास करनेसे वाणी शुद्ध होती है।

राग-द्वेषसे कैसे छुटकारा मिले, यह पूछनेपर श्रीमहाराजजी साधकोंको विस्तारसे समझाते थे कि राग-द्वेष क्या हैं और कैसे उन्हें दूर किया जा सकता है? आप कहते थे कि मनुष्य जिस समय नीतिको भूल जाय और सदाचारके नियमोंका कोई ध्यान न रखे, उस समय ऐसा मानना चाहिये कि वह राग-द्वेषके अधीन हुआ है। अहंकार ही राग-द्वेषका मूल है। उसीमें-से ममत्व और परत्वकी भावना निकलती है। ममत्वका, ममताका नाम है राग और परत्वका नाम है द्वेष।

यदि किसी वस्तुमें मन इस प्रकार फँस जाय कि किसी भी प्रकारका अपमान, निरादर या दुःख होनेपर भी न हटे तो मानना चाहिये कि उसमें राग है। जैसे गोपियोंका श्रीकृष्णभगवान्में था। यदि किसी वस्तुसे मन ऐसा हट जाय कि उसमें दोष-ही-दोष दिखायी दे, कोई भी गुण न दीख पड़े तो मानना चाहिये कि उसमें द्वेष है। जैसे कंसका श्रीकृष्णमें था। राग-द्वेषकी उत्पत्ति गुण-दोष या निन्दा-स्तुतिके चिन्तनसे ही होती है, इनमें विषयोंका चिन्तन रहता है। ये ही संसारके कारण हैं। निन्दा-स्तुतिके न करनेकी प्रतिज्ञासे राग-द्वेष दूर किये जा सकते हैं। पूर्ण ज्ञानी या भक्त राग-द्वेषसे मुक्त होता है। उसका ध्यान करनेसे भी राग-द्वेष छूट सकते हैं। राग-द्वेष छूट

जानेसे चित्त हलका हो जाता है और उसमें सत्त्वगुणकी प्रधानता हो जाती है। राग-द्वेषवाला व्यक्ति उन्नतिकी, खुशहालीकी पगडण्डीपर नहीं बढ़ सकता। निर्विकल्प तत्त्वका साक्षात्कार उन्हीं मुनियोंको होता है जो राग, भय और क्रोधसे मुक्त हो गये हैं—

वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः ।

निर्विकल्पो ह्ययं दृष्टः प्रपञ्चोपशमोऽद्वयः ॥

महाराजजीका कहना था कि राग-द्वेष न तो भक्तमें हो सकते हैं और न ज्ञानीमें। कारण; भक्तको प्रत्येक विधानमें भगवान्का आदेश दीख पड़ता है और ज्ञानी प्रारब्ध-भोग मानता है। इसलिये दोनोंमें ही न राग रहता है, न द्वेष। यों राग-द्वेषका मूल कारण है—अविवेक। विवेक होनेपर मन निःसत्त्व हो जाता है। तब उसमें राग-द्वेष कैसे रहेंगे? हाँ, रागकी निवृत्ति केवल विवेकसे नहीं होती। विवेकसे तो राग-द्वेषसे छुटकारा पानेकी कुंजी मिल जाती है। उसकी पूर्ण निवृत्ति होती है भगवत्प्रेम और आत्मप्रेमसे। भगवान्में राग हो या आत्मामें राग हो तो लौकिक राग छूटता है। लोहेके बिना लोहा नहीं कटता।

ध्यानका मर्म बताते हुए महाराजजी कहते थे कि ध्यानके समय मुख्यरूपसे अपने इष्टके स्वरूपका ही चिन्तन करना चाहिये। यदि स्वरूपमें चित्त स्थिर न हो तो ध्येयकी लीलाओंका ही चिन्तन करे। रोना हो तो

इष्टदेवकी किसी लीलाका चिन्तन करते हुए रोये। हँसना हो तो भी उसकी लीलाका आश्रय लेकर हँसे। रामायणमें रामकी लीलाएँ हैं, भागवतमें कृष्णकी। उन लीलाओंका चिन्तन करना ही ध्यान है।

भगवान्के साकार स्वरूपका ध्यान करना हो तो पहले दोनों हाथोंको घुटनोंपर रखकर सुखासनसे स्थिर होकर बैठे। नासिकाके अग्रभागपर दृष्टिको स्थिर करे। मनको विषयोंसे विरत करे। आगे-पीछेकी बातोंका चिन्तन न करे। फिर अपने भगवान्के मनोहर अंगोंमें मनको घुमाये। क्रम-क्रमसे एक अंगसे दूसरे अंगपर अपने चित्तको ठहराये। फिर उसीको एकाग्र चित्तसे देखता रहे। इष्टके अतिरिक्त अन्य किसी विषयका चिन्तन न करे।

प्रतिदिन इस प्रकार अभ्यास करनेसे थोड़े दिनोंमें प्रसन्नता और आनन्दका आविर्भाव होने लगता है। क्रमशः शरीरमें स्तब्धता, रोमांच, स्वेद और कम्प आदि लक्षण प्रकट होते हैं। धैर्यपूर्वक लगे रहनेसे इसमें सफलता प्राप्त होती है। भगवान्के स्मरण, सदाचार, निरभिमानितासे भगवत्कृपा मिलती है। जब भगवच्चिन्तन होने लगता है तब जगच्चिन्तन स्वतः छूट जाता है। ध्यान-अभ्यास बढ़नेपर चित्त भगवत्प्रेममें डूब जाता है। यही साधनाका पूर्णपद है, यही है—भगवत्साक्षात्कार।

[पावन-प्रसंग]

पूज्य श्रीहरिबाबाजीकी अनूठी जीवनचर्या

जो महापुरुष परब्रह्म परमात्मासे अभिन्न होते हैं, उनके स्थूल शरीरसे उपस्थित रहने या न रहनेसे उनकी विद्यमानतामें कोई बाधा नहीं पड़ती। वे स्थूल शरीरसे न दीखनेपर परमार्थतः परमात्मरूपसे सर्वत्र विद्यमान एवं वर्तमान रहते हैं। अधिकारी पुरुष कहीं भी उनका दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। उनकी आकृति सूक्ष्मरूपसे रहती है और अपने भक्तोंके हृदयमें, जबतक लिंग शरीरका भंग नहीं हो जायगा तबतक बनी रहती है। इसमें सन्देह नहीं कि श्रीहरिबाबाजी महाराज आज भी ब्रह्मरूपसे, ईश्वररूपसे, आत्मरूपसे और विराट् रूपसे सर्वत्र परिपूर्ण हैं। उनका स्वरूप अविनाशी है।

उनकी जीवनचर्याका यह अद्भुत चमत्कार था कि वे अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोते थे। रात्रिके उत्तरार्धमें ढाई-तीन बजे ही जग जाते थे। चार बजेसे सामूहिक संकीर्तन प्रारम्भ हो जाता था। नौ बजेसे रासलीला देखते थे। जब वे परिभ्रमणके लिये बाहर निकलते थे तो लोग अपनी घड़ियाँ मिला लिया करते। समयकी मर्यादाका ऐसा पालन विरले ही किसी मनुष्यके जीवनमें सम्भव है।

श्रीहरिबाबाजी महाराज अपनी युवावस्थामें गंगातटपर विचरण करते हुए भेरियामें श्रीअच्युतमुनिजी महाराजके पास गये। उन्होंने श्रीमुनिजीसे प्रार्थना की—‘महाराज!

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ऐसी कृपा करें कि वृत्ति अपने स्वरूपमें टिक जाय।' मुनिजी एक वयोवृद्ध, विद्वान्, भारत-प्रसिद्ध सन्त थे। वे जरा झुककर बैठे हुए थे। प्रार्थना सुनते ही तनकर बैठ गये और बोले—'अरे हरि! तू आलसी बनना चाहता है? कृपाकी भीख माँगना आलसी बनना है। तू स्वयं अपने पौरुषसे वृत्तिके अस्तित्वको मटियामेट कर दे।'।

श्रीहरिबाबाजी यह प्रसंग अत्यन्त प्रेम और प्रसन्नतासे कभी-कभी सुनाया करते थे। जो लोग कहते हैं कि श्रीहरिबाबाजीने वेदान्त और वेदान्ती गुरुको छोड़ दिया था, वे मिथ्याभाषी हैं। बाबा ब्रह्मनिष्ठ रहकर ही लोक-कल्याणके लिये भक्तिका प्रचार और नाम-संकीर्तन करते थे।

पौरुषका प्रकाश— श्रीहरिबाबाजीकी जीवनचर्यामें पौरुष ही नहीं महापौरुषका प्रकाश था। वे जन-जनमें और कण-कणमें भगवान्का ही दर्शन करते थे। उनकी सब क्रिया भगवद्-दृष्टिसे ही होती थी। जब उन्होंने लगभग सात सौ गाँवों, गायों और किसानोंको गंगाजीकी बाढ़से ग्रस्त और सन्त्रस्त देखा तो स्वयं फावड़ा और टोकरी लेकर बाँध बनानेके काममें लग गये। झुण्ड-के-झुण्ड लोग जुट पड़े। भण्डारे खुल गये। लोगोंके मनोरथ पूर्ण होने लगे। चमत्कार-पर-चमत्कार। श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज आकर वहीं विराज गये। घोषणा कर दी गयी—‘बाँध-भगवान्की सेवामें एक टोकरी मिट्टी डालो और जो इच्छा हो प्राप्त करो।’ केवल दस महीनेमें इतना बड़ा बाँध तैयार हो गया, जिसके निर्माणमें करोड़ों रुपयेका खर्च होता। उस समयकी ब्रिटिश सरकारने भी हार मान ली थी। उसकी लम्बाई तेईस मीलके लगभग है। वे सभी वस्तुओंको ईश्वररूप और सभी क्रियाओंको ईश्वरकी सेवा समझते थे और बताया करते थे।

निन्दा न सुनना—उनमें एक अद्भुत विशेषता यह थी कि वे किसीकी निन्दा सर्वथा नहीं सुनते थे। निन्दा करनेवालेसे कह देते थे कि ‘भगवान्का नाम लो या बाहर जाकर कोई काम करो।’ एक बार एक

मासिक पत्रिकामें लगातार दो-तीन बार साधुओंकी आलोचना छपी तो उसको उन्होंने पढ़ना ही बन्द कर दिया। वे कहते तो यह थे कि 'निन्दा-स्तुति दोनों ही नहीं करनी चाहिये' परंतु यह देखनेमें आया कि वे साधारण-से-साधारण व्यक्तियोंके छोटे-छोटे गुणोंकी प्रशंसा किया करते थे।

बड़ोंका आश्रय—एक बार उन्होंने कहा था कि ‘यदि अपनेसे बड़ा कोई मनुष्य न मिले तो किसी पशु, पक्षी और पत्थरोंको भी अपनेसे बड़ा मानकर उसके नीचे रहना चाहिये। बड़ोंकी छत्रछायामें रहनेसे अपनेमें दम्भ, अभिमान आदि दोष नहीं आते और पूजा-प्रतिष्ठा भी उन्हींकी ओर चली जाती है।’ उनके जीवनमें यह प्रत्यक्ष देखा गया कि वे सर्वदा ही किसी-न-किसी बड़े महात्माके साथ रहे।

वैसे देखें तो बाबाके द्वारा श्रीभगवन्नामका बहुत बड़ा प्रचार-कार्य हुआ। उत्तर भारतमें ऐसा कोई विरला ही नगर होगा, जहाँ उन्होंने पावन नामके उद्घोषसे वातावरणको पवित्र न बनाया हो। कोई अभाग ही आध्यात्मिक पुरुष होगा, जिसके कानोंमें उनके आदर्श चरित्र और प्रेममय नामकी ध्वनि न पहुँची हो। इतना होनेपर भी वे प्रचारके भावसे कितने मुक्त थे—इसका एक उदाहरण देखिये—वृन्दावनके श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके आश्रममें वे श्रीधरीके अनुसार गीतापर कुछ उपदेश कर रहे थे। एक अजनबी आदमी बीचमें बोल उठा—‘महाराज! जरा जोरसे बोलिये, सुनायी नहीं पड़ता।’ बाबाने कहा—‘भैया! हम अपना नित्य-नियम पूरा करनेके लिये गीताका पाठ करते हैं। तुम्हें नहीं सुनायी पड़ता तो अपना मन और एकाग्र करो, पास आ जाओ। सन्तोष न हो तो चले जाओ। हम भगवान्को सुनानेके लिये पाठ-कीर्तन करते हैं, मनुष्यको सुनानेके लिये नहीं।’

अन्न ब्रह्म— श्रीहरिबाबाजी महाराजका भोजन बरसोंतक एक सरीखा चलता रहता। साबूत मूँग और सब्जी—दोनों मिलाकर एक साथ पकाया जाता था। प्रायः रोटीके साथ खाते थे। भोजन आनन्द अपने उपयोगकर्ताके अपने

ब्रह्मलान् जगद्गुरुजी एस ही सन्त-काटिक महापुरुष थे। वे एक महान् वीतराग, विवेकी, ब्रह्मनिष्ठ तथा ज्ञानयोगी तो थे ही, साथ ही सर्वभूतहितैषी होते हुए उनकी ब्रह्मात्म-दृष्टि थी। ध्यानयोगमें उनकी मुख्य निष्ठा थी। वे लगातार तीन घण्टेसे छः घण्टेतक ध्यानमें बैठे रहते। जिन लोगोंने उनका दर्शन किया, उनको मालूम है कि जब वे ध्यानमें बैठते तो उन्हें बाह्य जगत्का ध्यान नहीं रहता। ढोल-नगाड़े, गाजे-बाजे और सांसारिक शोर-गुल भी उनके ध्यानमें आया-जाया नहीं करता। उनके ध्यान में

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

इनका आभास ही नहीं होता। उनके ध्यानकी यह विशेषता थी कि बिना घड़ी देखे निर्धारित समयपर ध्यान पूरा हो जाता। उन्होंने दण्ड-संन्यास ले रखा था। वे प्रायः पैदल-यात्राके अभ्यासी थे। गंगा-किनारे रहने और घूमनेका उनका अभ्यास था।

स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजका जन्म वि०-
सं० १९४९ (ई० सन् १८९२)-में मथुरा जिलान्तर्गत
भाण्डीरवनस्थ ग्राममें एक प्रतिष्ठित सनाढ्य ब्राह्मण पं०
श्रीटीकारामजीके घरमें हुआ। आपने सेंटजांस कालेज
आगरामें उच्च शिक्षा प्राप्त की। संस्कृतका भी आपको
प्रगाढ ज्ञान था। आप परम विरक्त तथा संसारसे विमुख
थे। बाल्यावस्थासे ही संसारमें कोई रुचि नहीं थी।
प्रारम्भसे ही ये स्वभावसे दयालु एवं परोपकारी थे।
बीस वर्षकी अवस्थामें जुलाई १९१३ ई० के श्रावण
मासमें आपने गृहका परित्याग कर दिया और गंगा-
यमुना तथा सरयू आदि पवित्र नदियोंके तटपर एवं
विभिन्न तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए आप सर्वप्रथम अयोध्या
पहुँचे। १९१६ ई० में श्रीस्वामी चैतन्याश्रमजी महाराजसे
दीक्षा ली और दण्ड ग्रहण किया। इस समय आपकी
अवस्था चौबीस वर्षकी थी।

आपने आद्य श्रीशंकराचार्यजीके इस निर्देशको—
‘संन्यासीको चाहिये कि वह सदा धूमता रहे एवं धर्म-
प्रचारमें निरत रहे’ अक्षरशः अपने जीवनमें उतार लिया।
फलतः आप अधिकांशतः गंगा-यमुनाके मध्य देशमें पैदल
ही विचरण करते रहे। इन दिनों प्रायः आप गढ़मुक्तेश्वर
एवं बागपत (मेरठ क्षेत्र) —में ही विचरते हुए साधनारत रहे।
इसी साधनाके मध्य आपने समस्त वेदान्त, धर्मशास्त्रों,
रामायण, महाभारत एवं अठारहों पुराणोंका गम्भीर अध्ययन
किया तथा विशेष पारायण किये।

कठिन-से-कठिनतर व्रतोंका अनुष्ठान करते हुए गंगा-यमुनाके तटपर पैदल विचरते अपने धर्माचरणसे अनेक व्यक्तियोंको स्वधर्मनिष्ठ बनाते हुए श्री १००८ स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराजने इस भारतवर्षकी पावन भूमिपर न जाने कितनी पैदल यात्राएँ की हैं। एक समय अल्पाहार, त्रिकाल-स्नान, गंगाजल-पानपूर्वक आप जप-

यज्ञ एवं ध्यानमें तल्लीन रहते। दृष्टि सदा नीची रखते या आँख बन्द कर लेते थे। शास्त्रका यह वचन है कि 'न नेत्रचपलो यतिः।' संन्यासीको नेत्रोंको पृथ्वीकी ओर झुकाकर चलना चाहिये, इसे आपने अपने जीवनमें उतार रखा था। ये कभी भी न नगरकी भीड़भाड़के क्षेत्रमें प्रवेश करते, न किसी स्त्रीको देखते, न पैर ही छुआते थे। यदि कभी कोई स्त्री भूलसे चरण छू लेती तो तीन दिवसका कठोर व्रत, अन्न-जल-त्याग आदि विभिन्न कठिन व्रत धारण करते। स्वादके नामपर कुछ नहीं लेते। प्रातःकालके तीन बजेसे पुनः रात्रिके दस बजेतककी जिन्होंने आपकी दिनचर्या देखी है, उनका कहना है कि ध्यान, जप, अध्ययन, सत्संग, उपदेश, धर्म-प्रचार—इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रसंगको वहाँ स्थान नहीं।

‘शिखा-सूत्र धारण करो’, ‘सन्ध्या-वन्दन और बलिवैश्वदेव करो’, ‘अतिथि-सत्कार करो’, ‘भारतीय वेष-भूषा धारण करो’, ‘शास्त्रोंका अध्ययन करो’, ‘रामायणका पाठ करो’, ‘मादक द्रव्योंका सेवन न करो’—प्रायः इन्हीं बातोंपर आप अधिक जोर देते थे। आपकी दृष्टिमें थोड़ेसे भी धर्मके आचरणका बड़ा महत्त्व रहता। धनके सामने धर्मको आपने सदासे महत्त्व दिया। यही कारण है कि आपके कृपापात्रों, भक्तों—अनुयायियोंमें साधारण कोटिकी जनता ही अधिक है, जिनमें अनपढ़ किसान, जाट, गूजर, गरीब ब्राह्मण, छोटे-छोटे व्यापारी वैश्य, दफ्तरोंके साधारण कर्मचारीगण अधिक हैं। आप प्रायः कहा करते थे कि ‘यह वर्ग ही समाजकी रीढ़ है, यदि यह ‘शिखा-सूत्र’ को धारण किये रहे, सन्ध्या-वन्दनादि, नित्य-नैमित्तिक स्वकर्मोंमें वर्णाश्रमानुसार लगा रहे तो फिर संसारमें कलियुग लाख आये, कुछ बिगड़नेवाला नहीं।’ अतः आपका अधिक-से-अधिक बल स्वधर्माचरणपर ही रहता था।

धर्मोपदेश

महाराजश्री स्वयं भी धर्मकी साक्षात् मूर्ति थे। कठोर-से-कठोर व्रतोंका आचरण करते-करते आपने तरुणावस्थामें ही सम्पूर्ण इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली। तम्बाकू पीनेवालेके यहाँ आप भिक्षा पानेका सदैव निषेध करते थे।

इस प्रकार स्वामीजी महाराज त्याग और सरलताकी प्रतिमूर्ति थे। इनका जीवन सनातन जगत्के लिये अनुकरणीय तथा शिक्षाप्रद रहा है। ८१ वर्षकी अवस्थामें भाद्रशुक्ला त्रयोदशी, तदनुसार १० सितम्बर १९७३ ई० सायंकालकी प्रदोष-वेलामें आप इस पांचभौतिक शरीरको छोड़कर ब्रह्मलीन हो गये।

‘दूसरोंके मर्मपर आघात न करे, क्रूरतापूर्ण बात न बोले तथा औरोंको नीचा न दिखाये। जिसके कहनेसे दूसरोंको उद्वेग होता हो, ऐसी रुखाईसे भरी हुई बात पापियोंके लोकोंमें ले जानेवाली होती है; अतः वैसी बात कभी न बोले। जिन वचनरूपी बाणोंके मुँहसे निकलनेसे आहत होकर मनुष्य रात-दिन शोकमें पड़ा रहता है और जो दूसरोंके मर्मस्थानोंपर घातक चोट करते हैं, ऐसे वचनबाण सद-असद-विवेकशील, विद्वान् पुरुष दूसरोंके प्रति कभी न छोड़े।’ [महा० अनुशा० ४।३१-३२]

विद्यार्थियों की आदर्श जीवनचर्या

[कुछ प्रेरक दृष्टान्त]

(डॉ० श्रीविश्वामित्रजी)

विद्याएँ दो हैं, एक 'अपरा' विद्या अर्थात् संसारी विद्या है और दूसरा 'परा' विद्या अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान है। पहली व्यक्तिकी पेट-पूजाके लिये आवश्यक है और दूसरी परमात्माकी पूजाके लिये अनिवार्य है। सफल जीवनके लिये इन दोनों विद्याओंका समन्वय अपरिहार्य है।

प्रत्येक प्राणीकी जन्मसे मरणतक एक ही मौलिक माँग है—हरेक सुख चाहता है। जीवका हर प्रयास इसीकी प्राप्तिके लिये है। यदि यह जान लिया जाय कि हमें कैसा सुख चाहिये तो आगेकी यात्रा बहुत सहज हो जायगी। हम चाहते हैं ऐसा सुख जो सबसे मिले, सब जगह मिले और हर समय मिले। ऐसा सुख जो सर्वत्र मिले, सर्वदेश, सर्वकालमें मिले, प्रचुर मात्रामें मिले, बिना परिश्रम मिले तथा पराधीन न हो, ऐसे सुखको परम सुख कहा जाता है, शाश्वत-सुख (eternal happiness) कहा जाता है। इसी सुखकी प्राप्ति है प्रत्येक प्राणीके जीवनका लक्ष्य। हम पढ़ाई कर रहे हैं इसी सुखके लिये, कलको व्यापार या नौकरी करेंगे इसी सुखके लिये, विवाह होगा, सन्तान होगी, इसी सुखकी प्राप्तिके लिये इत्यादि। खोज इसी सुखकी है, परंतु मिल तो यह नहीं रहा है। तो भूल कहाँ है? अनश्वर सुखकी जगह नश्वर क्यों मिल रहा है? आजके जो विद्यार्थी हैं, वे ही कलके देशके नागरिक एवं कर्णधार होंगे। उन्हें अपने जीवन-लक्ष्यकी प्राप्ति हो सके, इसके लिये कतिपय दृष्टान्तों एवं महापुरुषोंके जीवनसे सम्बन्धित प्रेरक प्रसंगोंको प्रस्तुत किया जा रहा है। इनमें निहित शिक्षाओंको अपनी जीवनचर्यामें उतारकर वे अपने जीवनके शाश्वत लक्ष्यको प्राप्त कर सकते हैं।

[१]

एक राजकन्या अपनी सखियोंके साथ जल-क्रीड़ाके लिये गयी है। सरोवरके किनारे राजकन्याने अपना अनमोल गलेका हार उतारकर रख दिया। सभी स्नानका सुख लेकर, जलसे बाहर निकल, अपने-अपने कपड़े पहन रही हैं। राजकन्याका नीलबीजा हार नहीं मिल रहा।

किसी सहेलीकी शरारत नहीं, क्योंकि सभी सरोवरके भीतर थीं। इधर-उधर खोजनेपर भी न मिला। महल पहुँचकर राजाको सूचना दी गयी, नगरमें घोषणा हुई, जो ढूँढ़कर लौटायेगा, उसे एक लाख रुपये इनाम मिलेगा। खोज शुरू, लेकिन सभी असफल। एक लकड़हारा प्याससे व्याकुल हो पानी पीनेके लिये उसी सरोवरके किनारे गया। पानी पीते-पीते, उसे हार नीचे तलपर पड़ा दिखायी दिया। उसकी प्रसन्नताकी सीमा न रही, डुबकी लगायी, हार पकड़नेकी कोशिश की, परंतु हाथमें हार नहीं, कीचड़ आता है। बाहर निकला, जल निश्चल हुआ, पुनः हार दिखा, डुबकी लगायी, फिर हाथमें पंक। जाकर राजाको सूचना दी। विशेषज्ञ बुलवाये गये, उनके भी सभी प्रयास विफल। सब चकित एवं निराश। एक सन्तका आगमन हुआ, भीड़का कारण पूछा? समस्या सुनी—कुशाग्र बुद्धि थे, अविलम्ब समझ गये—हार ऊपर पेड़पर लटक रहा था, जिसे पंछी उठाकर अपने घोंसलेमें ले गया था, उसीका प्रतिबिम्ब जलमें दिखायी दे रहा था। छायाको कैसे पकड़ा जाय? अतः सबके हाथमें कीचड़। हम चाहते तो बिम्ब हैं—परम सुख और पकड़ रहे हैं प्रतिबिम्बको, नश्वर-सुख को, तो हाथ कीचड़ ही आता है अर्थात् दुःख या दुःखयुक्त सुख ही जीवनभर मिलता है। हमारी खोज ही त्रुटिपूर्ण है। उस सुखको पानेके लिये यात्रा शुरू करो। कैसे?

सदा स्मरणीय तथ्य याद रखे—प्रतिबिम्बसे वस्तु प्राप्त नहीं होती, अतः बिम्बको पकड़ो अर्थात् उसे पकड़ो, जहाँ सुख निवास करता है।

विषय-सुख या सांसारिक सुख उस परमानन्द परमसुखकी परछाई है। अतएव संसारसे कभी सुख नहीं मिलेगा। शान्ति, सुख और आनन्दरूपी हीरोंका हार जिसे हम संसारमें प्रतिबिम्बकी तरह पानेकी कोशिश कर रहे हैं और निराश होते हैं—कीचड़ अर्थात् दुःख बार-बार हाथ लगता है, उस सुख-शान्ति-आनन्दकी खोज ही परमात्मा

डॉक्टर सी०वी० रमण एक सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक हुए हैं। इन्हें अपने कार्यमें सहायताहेतु एक युवा वैज्ञानिककी आवश्यकता थी। अनेक अभ्यर्थी साक्षात्कारके लिये पधारे, परंतु सभी अयोग्य घोषित किये गये। कोई पसन्द नहीं आया। सभी लोग तो

चले गये, पर एक अभ्यर्थी रमणजीको उनके ऑफिसके बाहर चक्कर लगाता दिखा, पूछा—‘जब तुम reject कर दिये गये हो, तो व्यर्थमें आगे-पीछे क्यों घूम रहे हो?’ युवकने कहा, ‘सर! आप नाराज न हों। आने-जानेके लिये आपके ऑफिसकी ओरसे जो खर्चा दिया जाता है, गलतीसे मुझे अधिक दिया गया है, उसे लौटानेके लिये क्लर्कको ढूँढ़ रहा हूँ।’ रमणजीने तुरन्त कहा—‘You are selected’ वैज्ञानिक क्षेत्रकी कमी तो मैं पढ़ाकर, सिखाकर पूरी कर दूँगा, परंतु गुणी, चरित्रवान् बनना तो मैं नहीं सिखा सकता। सांसारिक विद्या बेशक बहुत कुछ सिखा सकती है, पर इन्सान बनना नहीं सिखा सकती। यह परा-विद्या ही सिखायेगी। अतएव सार्थक, सम्पूर्ण जीवनके लिये इन दोनों विद्याओंका सम्मिश्रण हो। दोनोंमेंसे किसी एकका वरण न व्यावहारिक ही लगता है और न ही सही।

[4]

एक चित्रकार, चित्रकलामें अति कुशल, सजीव चित्र बनाता। एक बार उसने एक नन्हे बालकका चित्र बनाया। भोला-भाला मुख इतना आकर्षक कि लाखोंने खरीदकर अपने घरोंमें लगाया। गृहोंकी शोभा बन गया वह चित्र। चित्रकार अति प्रसन्न, सुविख्यात हो गया। जब वह वृद्ध हो गया तो सोचा, आज जीवनका अन्तिम चित्र किसी ऐसे दुष्ट, क्रूर, अपराधीका बनाऊँगा, जिसकी आकृतिसे उसकी क्रूरता इस प्रकार झलके कि उस रचनाको देख लोग कुकर्म-अपराध करना बन्द कर दें। ऐसे व्यक्तिकी खोजमें एक जेलमें गया। अनेक बन्दी, अपराधी देखे, एक पसन्द आ गया। उसके पास बैरकके बाहर बैठ उसका चित्र बनाना शुरू किया। अपराधीने पूछा—‘मिस्टर! क्या कर रहे हो?’ ‘आपका चित्र बना रहा हूँ।’ ‘मुझमें ऐसा क्या है?’ चित्रकारने मासूम बालकका चित्र दिखाते हुए कहा—‘बन्धु! अनेक वर्ष पहले मैंने इसे बनाया था। लोगोंको बेहद पसन्द आया था, आज आपका बनाना चाहता हूँ।’ चित्रको देखकर बन्दीकी आँखोंमें आँसू आ गये। चित्रकारने कहा—‘लगता है चित्र देख आपको अपने पुत्रकी याद आ गयी। कृपया क्षमा करें, मैंने

आपकी भावनाओंको आहत किया है।' 'नहीं चित्रकार! यह चित्र मेरे बच्चेका नहीं, मेरा है—अपने बचपन और वर्तमानको देख रोना निकल गया। कुसंस्कारों एवं कुसंगके कारण और सुसंस्कार न मिलनेके कारण दुष्प्रवृत्तियोंसे प्रेरित होकर मैं एक क्रूर अपराधी बन गया। काश! मुझे कोई सन्मार्ग दिखानेवाला मिल जाता, जिसकी सत्संगतिसे मेरे सुसंस्कार उभर सकते, मैं भी ईश्वरोन्मुख हो सकता तथा उन महानतमसे युक्त होकर उनकी कृपाका, दया-करुणाका तथा उनके प्यारका पुण्य पात्र बन सकता, तो आज यह दुर्दशा न होती।' विद्यार्थियो! सत्संगतिका वरण करोगे तो कुसंगतिसे बचे रहोगे और जीवनमें दिव्यता आ जायगी। यही स्थान है जहाँ परा-विद्या सिखायी जाती है। यह हमें झुकना सिखायेगी, विनम्र बनना, अपने अभिमानको मारना सिखायेगी, हमें मानव बनना सिखायेगी, पशुताको मारेगी और मानवताको उभारेगी। सबसे प्रेम करना तथा अपने भीतरसे वैर-विरोध-घृणाका उन्मूलन करना सिखायेगी यह विद्या। दुर्गुणों-दोषों, दुर्बलताओंको दूरकर हमें सद्गुणों जैसे—सद्भावना, सहनशीलता, क्षमा, संयम आदिसे सम्पन्न करेगी यह विद्या। हमें यह नहीं सोचना कि अन्य न तो करते हैं, न कर ही पाये हैं तो हम क्यों करें? नहीं, और सुधरें न सुधरें, हमें अपना सुधार करना है। तब परमात्मा हमारा उद्धार करेगा। उद्धार उन्हींका, जो चलने—आगे बढ़नेका अभ्यास जारी रखेंगे।

[୩]

एक बार एक राजाको गणित सीखनेकी इच्छा हुई। एक महान् गणितज्ञको आमन्त्रित किया गया। राजाने निवेदन किया—‘पढ़ानेकी कृपा करें।’ गणितज्ञने आग्रह स्वीकारकर शिक्षा प्रारम्भ की। काफी समय बाद भी गणित राजाकी समझमें नहीं आया। जैसे शिष्योंकी प्रायः सोच होती है, वैसे ही सोचा—गुरु कच्चे हैं, अतः पूछा—‘श्रीमन्! क्या गणित सीखनेका सरल और सुविधापूर्ण उपाय नहीं है?’ गम्भीर स्वरमें शिक्षकने कहा—‘महाराज! आप राजा हैं, आपके लिये सुन्दर राजमार्गकी व्यवस्था है, आरामके लिये सुखद व्यवस्था है, परन्तु विद्यार्थीके लिये विद्यार्जनका एक ही

१-शरीर स्वस्थ न हो—तबियत ठीक न हो तो पढ़ाईमें मन नहीं लगता। अस्वस्थ शरीर उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं कर सकता। अतः ऐसे नियमोंका पालन

वे उन दिनों पटना उच्च न्यायालयमें वकालत करते थे। एक दिन एक व्यक्ति उनके पास पहुँचा। वह बोला—
वकील साहब! मेरी विधवा चाचीको कोई सन्तान नहीं है।
मैं विधवा चाचीका उत्तराधिकारी बनना चाहता हूँ। चाची

जमनालालजीको समाजसेवी श्रीकृष्णदास जाजूने प्रेरणा देते हुए कहा था—देशसेवा और समाजसेवा भगवान्की साक्षात् पूजा है। इस कार्यके लिये जीवन अर्पित कर दो। सन् १९०६ ई०में जाजूजी उन्हें अपने साथ कलकत्तामें आयोजित कांग्रेसके अधिवेशनमें ले गये। वहाँ गांधीजी, लोकमान्यतिलक तथा पं० मदनमोहन मालवीयजीके समक्ष जमनालालजीने स्वदेशीकी शपथ ली। एक बार वे सत्याग्रह करके जेल गये। जेलसे वापस लौटे तो उन्हें पता चला कि उनके कपड़ा-रूई कारखानेके प्रबन्धकोंने आय कम दिखाकर टैक्सका ७५ हजार रुपया बचा लिया है। वे रातभर सो नहीं सके। सवेरे वर्धा पहुँचकर गांधीजीसे पूछा कि इस अधर्मकार्यका प्रायश्चित्त कैसे किया जाय? गांधीजीने कहा—इसमें तुम्हारी सहमति तो थी नहीं, अतः

श्रीटण्डनजी उन दिनों संसद-सदस्य थे। वे लाला अचिन्तराम एवं हरिहरनाथ शास्त्रीके साथ नयी दिल्लीमें २, टेलीग्राफ लेनकी कोठीमें रहते थे। तीनोंका भोजन एक साथ बनता था। मकानका किराया तथा बिल वे बराबर-बराबर बाँटकर अदा करते थे। तीनों राजनेताओंने अलग-अलग सरकारी आवास न लेकर एक साथ रहनेका निर्णय इसलिये किया था, जिससे सरकारी खर्चमें बचत हो। वे कहा करते थे कि जनप्रतिनिधियोंको जनताकी खून-पसीनेकी कमाईको अनापशनाप खर्च करनेका अधिकार नहीं है। टण्डनजीकी जीवनचर्या अत्यन्त सादगीपूर्ण एवं भारतीयताके अनुरूप थी। वे हिन्दी तथा गोमाताके प्रति

भाईजीने विनम्रतापूर्वक राशि लेनेसे इनकार करते हुए कहा—मातृभूमिकी स्वाधीनताके संघर्षमें योगदानकर मैंने कोई नया अनूठा कार्य नहीं किया है। मेरे वंशके भाई मतिदासने गुरु तेगबहादुरजी महाराजके साथ हिन्दूधर्मकी रक्षाके लिये शरीरको आरेसे चिरवाकर बलिदान दिया था।

प्रशंसा-पत्र जलवा दिये—पण्डित दीनदयाल

वर्तमान समयमें राजनेता सत्ता, पद तथा मान-सम्मान प्राप्त करनेके लिये तरह-तरहकी तिकड़में करनेमें नहीं हिचकिचाते। क्या वे इन राजनेताओंके त्याग-तपस्यामय जीवन, उनकी नैतिकता, ईमानदारीके प्रसंगोंसे प्रेरणा लेकर अपनी क्षुद्र प्रवृत्तिको त्यागकर आदर्श उपस्थित करनेका साहस दिखायेंगे?

श्रीआशुतोष मुखर्जी बंगालके अग्रणी न्यायाधीश थे। वे कलकत्ता विश्वविद्यालयके कुलपति भी रहे थे। उनकी जीवनचर्या धर्मशास्त्रानुसार सात्त्विकतापूर्ण थी। प्रत्येक दिन भगवान्की पूजा-अर्चना करनेके बाद ही वे जल-अन्न ग्रहण करते थे। वे अपनी माँके प्रतिदिन चरण दबाते थे।

उन दिनों चतुर्थ हेनरी ब्रिटेनके राजा थे। उनके राज्यके एण्डरसन नामक न्यायाधीश निष्पक्षताके लिये विख्यात थे। वह प्रतिदिन भगवानसे प्रार्थना करते कि

भिक्षा—भिक्षाकी परम्परा बहुत पुरानी है। एक

* वेदमें विद्यार्थीके लिये शिष्य शब्द नहीं, ब्रह्मचारी शब्द है और उपनिषद्में अन्तेवासी। देखिये—अथर्ववेदका ब्रह्मचर्यसूक्त एवं तैत्तिरीय उपनिषद्।

दानकी एक अजीब दास्तान कवि माघकी है। जितने बड़े कवि, उतने ही बड़े दानी। एक दिन राजसभामें प्राप्त पारितोषिककी पूरी राशि रास्तेमें ही याचकोंमें बाँट दी। खाली हाथ पहुँचे तो घरके द्वारपर भी याचक! बड़ी उलझन, बड़ा धर्मसंकट। सोचने लगे—धन है नहीं, दानके बिना चैन नहीं, दानार्थ किसीसे माँगना क्षुद्रता है, खुदकुशी कर लूँ—मगर वह तो पाप है! तो ऐ मेरे प्राण! इस विवशतामें आप स्वयं मुझे छोड़ चलिये। हृदयको छूनेवाला श्लोक है—

चलें, इस दानरूप हिमालयकी पवित्र यात्रा शुरू करें।

जन्मदिन कब और कैसे मनायें ?

(आचार्य पं० श्रीबालकृष्णजी कौशिक, धर्मशास्त्राचार्य, एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी),
एम०कॉम०, एम०एड०, ज्योतिर्भूषण, कर्मकाण्डकोविद)

आजकल जन्मदिन मनानेका प्रचलन सर्वत्र दिखायी दे रहा है। भारतीय धर्मशास्त्रमें प्राचीनकालसे ही इसका विस्तृत उल्लेख है। धर्मशास्त्रमें इसे वर्धापनसंस्कार, अब्दपूर्तिकृत्य, वर्षवृद्धिकर्म, आयुष्यवृद्धिकर्म कहा गया है। आजकल इसे वर्षगाँठ, सालगिरह, जन्मदिवस, बर्थ-डेके नामसे मनाया जाता है।

कब मनायें—आजकल तो प्रायः अंग्रेजी दिनांकसे जन्मदिन मनाया जा रहा है। धर्मशास्त्रमें कहा गया है कि सौर वर्षके अन्तमें जब जन्मनक्षत्र हो तो उस दिन मनाये। अर्थात् जैसे किसीका सूर्य जन्मसमयमें मकरराशिका हो तो चालू वर्षमें जब सूर्यके मकरराशिमें रहते जन्मनक्षत्र आये तब जन्मदिन मनाये। कदाचित् यदि सूर्यके मकरराशिमें रहते दो बार जन्मनक्षत्र आये तो पहलेमें मनाये। यदि प्रथम जन्मनक्षत्र खण्डित हो, अशुद्ध समय हो तो दूसरे जन्मनक्षत्रको ग्रहण करे। यदि जन्मनक्षत्र दो दिन लगातार हो तो सूर्योदय एवं प्रातःकालव्यापी जन्मनक्षत्र अधिक श्रेष्ठ है।

यस्मिन् दिने सवितरि तन्क्षत्रदिनं भवेत्।

प्रत्यब्दान्ते च नक्षत्रे विधिं वक्ष्ये नृणां परम्॥

येनायुर्वर्द्धते नित्यं बलं तेजः सुखं सदा।

(वीरमित्रोदय-संस्कारप्रकाशमें गर्गका वचन)

एकमासे द्विजन्मर्क्षे प्रथमे जन्म चाचरेत्।

तस्मिन्क्षत्रखण्डे तु अन्त्यखण्डे समाचरेत्॥

उदयव्यापिजन्मर्क्षे तस्माद् ग्राह्यं तु जन्मनः।

सङ्गावव्यापिखण्डर्क्षे तत्र जन्म वरं शुभम्॥

(वृद्धगार्ग्य)

यदि किसीको जन्मदिन याद न हो या अतिक्रमण हो जाय तो शुभ तिथि, वार, नक्षत्र देखकर, धनुराशिके चन्द्रका त्यागकर जन्मदिवस मना सकते हैं। इसके अलावा जन्मतिथि (भारतीय मासोंके अनुसार)—को भी मनानेका प्रचलन चन्द्रमासानुसार है। जन्मोत्सवमें रिक्ता तिथि, पर्व, अष्टमी, कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, अमावास्या तथा धनुराशिका

चन्द्रमा निषिद्ध है। हस्त, मूल, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, उत्तरात्रय, धनिष्ठा, रेवती, पुनर्वसु एवं पुष्य नक्षत्र श्रेष्ठ हैं। शकुनि, विष्टि करण त्याज्य हैं।

शुभानां वारवर्गाश्च राशयश्च धनुर्विना।

श्रेष्ठा नेष्टास्तथा शेषा मकरो मध्यमो भवेत्॥

(संस्कारप्रकाश)

ज्योतिषमें जन्मकालीन सूर्यराशि अंशोंके आधारपर गत वर्षोंको जोड़ते हुए वर्षफल निकालकर वर्षभरका फलित भी बताया जाता है। अतः ज्योतिषशास्त्रीय गणनानुसार शोधित दिवस भी जन्मदिवस मनानेहेतु उचित है।

जन्मदिवस कैसे मनायें ?—जन्मदिवसकी पूर्व रात्रिमें पत्तोंकी बन्दनवार बाँधकर शान्तिमन्त्रसिक्त जलसे अभिषेक करें, शुद्ध खाद्य-पेय पदार्थका प्राशन करायें। प्रातःकाल मंगलस्नानकर या समीपस्थ नदी-तीर्थादिके जलसे स्नानकर नूतन वस्त्र धारण करें। सुवर्णसूत्र भी गृहव्यवस्थानुसार धारण करें। रक्षोघ्नसूक्तसे अभिमन्त्रित करके कटिसूत्र बाँधें।

यदि बालक हो तो माता-पिता एवं युवा, प्रौढ़ हो तो स्वयं वर्धापन, अब्दपूर्ति-संस्कारका संकल्प करें—

ॐ मम कुमारस्य दीर्घायुरारोग्यैश्वर्यादिवृद्ध्यर्थं

श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं धर्मार्थकाममोक्षचतुर्विध-
पुरुषार्थसिद्धिद्वारा श्रीमार्कण्डेयदेवतामृत्युञ्जयदेवताप्रीत्यर्थं
ग्रहशान्तिरक्षाविधानपूर्वकवर्धापनाख्यं कर्म करिष्ये।

वर्धापनसंस्कारमें गणपति, गौरी, ग्रहशान्तिके साथ पितृपूजन, मार्कण्डेयपूजन, चिरंजीवीपूजन, महामृत्युंजयपूजन तथा हवन, महाषष्ठीदेवीपूजन, नक्षत्र तथा नक्षत्रेशपूजन, अनिष्ट ग्रहजन्यशान्ति, संवत्सर, मास, पक्ष, तिथि, राशि आदिका पूजन, कुलदेवता, क्षेत्रपाल आदिका पूजन मुख्य है।

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।

कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयं तथाष्टमम्।

जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

प्रह्लादजीसहित इनका स्मरण करें। मध्याह्नमें मधु, घी, दही मिलाकर दूर्वासै एक हजार बार या अट्ठाईस बार मृत्युंजय मन्त्रसे हवनकर आयुष्यहोम करके श्रोत्रिय विप्रको भोजन करवाना चाहिये।

मार्कण्डेयस्तुति—मार्कण्डेयजीको श्वेत तिलमिश्रित गुड-दूध अर्पित करें तथा निम्न स्तुति करें—

द्विभुजं जटिलं सौम्यं सुवृद्धं चिरजीविनम् ।
मार्कण्डेयं नरो भक्त्या पूजयेत् प्रयतः सदा ॥
आयुष्प्रद महाभाग सोमवंशसमुद्भव ।
महातपो मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय नमोऽस्तु ते ॥
मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन ।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव ॥
चिरजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने ।
रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा ॥
मार्कण्डेय नमस्तेऽस्तु सप्तकल्पान्तजीवन ।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन्मुने ॥
चिरजीवी यथा त्वं तु मुनीनां प्रवरद्विज ।
कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीविनम् ॥
षष्ठीदेवी-पूजनमन्त्र—षष्ठीदेवीको दही, भात अर्पित

करें तथा निम्न प्रार्थना करें—

जय देवि जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि ।
प्रसीद मम कल्याणि महाषष्टि नमोऽस्तु ते ॥
रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे ।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥
रक्षामन्त्र—

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्मविष्णुशिखैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥

भूलकर भी मोमबत्ती न बुझायें। यदि कदाचित् जन्मदिवसके समय बालक, युवक या प्रौढ व्यक्ति रुग्ण हो तो अपमृत्युनाशहेतु मृत्युंजयमन्त्रसे हवनमें अग्रलिखित विशेष आह्वति देनी चाहिये—

मृत्युर्नश्यतु आयुर्वर्धतां भूः स्वाहा, मृत्युर्नश्यतु
आयुर्वर्धतां भुवः स्वाहा, मृत्युर्नश्यतु आयुर्वर्धतां स्वः

स्वाहा, मृत्युर्नश्यतु आयुर्वर्धतां भूर्भुवः स्वः स्वाहा ।
(वीरमित्रोदय)

ब्राह्मणोंसे यथासम्भव वेदोक्त पुण्याहवाचन करवायें, इसका विशिष्ट फल है। फिर मार्कण्डेयजीको निवेदित तिलगुडमिश्रित दूध पाँच बार निम्न मन्त्रसे पीयें।

मन्त्र—

सतिलं गुडसम्मिश्रमञ्जल्यर्धमितं पयः ।
मार्कण्डेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुःप्रवृद्धये ॥
जन्मदिवसको क्षौरकर्म, स्त्रीसंग, नखच्छेदन, हिंसा,
कलह, यात्रा, मांसाहार, गर्मजलसे स्नान निषेध है—

खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वानमेव च ।
आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥

वर्षवृद्धि-संस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि चारों वर्णोंके लिये प्रशस्त है। छोटे बालकोंके कटिसूत्र, स्वर्णकरधनी या कमरमें नया धागा बाँधना चाहिये। पुरुषोंको भी कटिसूत्र बदलना चाहिये।

सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नाने मङ्गलपाणिभिः ।
गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥
सायंकाल छायापात्र दान करें एवं बड़ों, बुजुर्गों,
गुरु, माता-पिता, वृद्धजनों, विप्रोंका आशीर्वाद लेकर
देवदर्शन करें।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

यदि हो सके तो जन्मदिवसपर वर्षानुसार दीपक प्रज्वलित करें। ६०वें जन्मदिनपर षष्ठीपूर्ति, ७०वें जन्मदिनपर सहस्रचन्द्रदर्शन आदि विशेष संस्कार करें। भारतीय संस्कृतिके अनुसार ही जन्मदिवस मनायें एवं जन्मनक्षत्रको महत्त्व दें, न कि जन्मतारीखको। दीप बुझायें नहीं, अपितु दीप जलाकर अपने जीवनको प्रकाशित करें।

भारतीय संस्कृतिमें दीपज्योतिकी पूजाका महत्त्व है, यह दीपकरूपी मोमबत्ती बुझाकर अखाद्य पदार्थोंसे बना केक काटना शास्त्रसम्मत नहीं है। दीपनिर्वापण तथा उसकी गन्ध ग्रहण करना आयुष्यनाशक माना गया है।

नित्य स्नान—शास्त्रीय एवं व्यावहारिक दृष्टिमें

(पं० श्रीबनवारीलालजी चतुर्वेदी, एम०ए०)

सृष्टिका निर्माण स्वयं सर्वशक्तिमान् नारायणने मायाके द्वारा किया है; अतः मायामय जगत्की नश्वर एवं अपवित्र वस्तुका संसर्ग शरीर अथवा शरीरके किसी तत्त्वसे हो जाय तो उसे अपवित्र माना जाता है, जिसकी शुद्धिहेतु सामान्य विधान स्नान ही है। स्नानसे मात्र शुद्धि ही नहीं, अपितु रूप, तेज, शौर्य आदिकी भी वृद्धि होती है—

गुणा दश स्नानकृतो हि पुंसो रूपं च तेजश्च बलं च शौचम् ।
आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं दुःस्वप्ननाशं च तपश्च मेधा ॥
(विश्वा० स्मृ० १।८६)

उपर्युक्त श्लोकसे स्पष्ट है कि स्नान हमारे लिये न केवल आध्यात्मिकताकी दृष्टिसे ही आवश्यक है, अपितु यह शरीरकी बहुत बड़ी आवश्यकता भी है। नवजात बालक हो अथवा वृद्ध व्यक्ति बिना स्नानके रोगोंका संक्रमण ही बढ़ेगा। अतः स्नान हमारी शारीरिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही आवश्यकता है; जिसे लगभग सभी व्यक्ति करते भी हैं, किंतु इसके बारेमें कुछ शास्त्रीय नियम भी हैं, जिन्हें अधिकांश व्यक्ति (बिना जानकारीके कारण) उपेक्षित कर देते हैं; अतः स्नानके कुछ नियमोंको यहाँ रेखांकित किया जाता है—

स्नान करनेमें सर्वप्रथम ध्यान देनेकी बात है कि स्नानसे शरीरको शुद्ध करना है, अतः स्नान भी शुद्ध जल एवं शुद्ध पात्रमें रखे जलसे ही करना चाहिये। ‘शुद्धोदकेन स्नात्वा नित्यकर्म समारभेत्’ आदि शास्त्रीय वाक्य स्पष्ट ही हैं। गंगादि पुण्यतोया नदियोंमें स्नान करना उत्तम माना गया है, तडागका मध्यम तथा घरका स्नान निम्न कोटिका है—

उत्तमं तु नदीस्नानं तडागं मध्यमं तथा ।
कनिष्ठं कूपस्नानं भाण्डस्नानं वृथा वृथा ॥
स्नानसे पूर्व संकल्प तथा किसी नदी आदिपर स्नानके समय स्नानांग-तर्पण करनेका भी विधान है—

‘स्नानाङ्गतर्पणं विद्वान् कदाचिन्नैव हापयेत्।’

जल सृष्टिका प्रथम तत्त्व है और जलमें सभी देवताओंका भी निवास है—‘अपां मध्ये स्थिता देवा सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम्’ तथापि स्नानसे पूर्व जलमें जलाधिपति वरुण, गंगा-यमुना आदि नदियोंका आवाहन कर लेना चाहिये। गंगाजीके नन्दिनी-नलिनी आदि नामोंका* स्मरणकर स्नान करनेपर उस जलमें स्वयं गंगाजीका ही वास होता है, ऐसा स्वयं भगवती गंगाजीका कथन है—

द्वादशैतानि नामानि यत्र यत्र जलाशये ॥

स्नानोद्यतः पठेज्जातु तत्र तत्र वसाम्यहम् ।

स्नान ताजे जलसे ही करे, गरम जलसे नहीं। यदि गरम जलसे स्नानकी आदत हो तो भी श्राद्धके दिन, अपने जन्म-दिन, संक्रान्ति, ग्रहण आदि पर्वों, किसी अपवित्रसे स्पर्श होनेपर तथा मृतकके सम्बन्धमें किया जानेवाला स्नान गरम जलसे न करे। चिकित्सा विज्ञान भी गरम जलसे स्नानको त्वचा एवं रक्तके लिये उचित नहीं मानता। तेल-मालिश स्नानसे पूर्व ही करनी चाहिये; स्नानोपरान्त नहीं।

स्नान करनेसे पूर्व हाथ-पैर-मुँह धोना चाहिये तथा इसके पश्चात् कटि (कमर) धोना चाहिये। यहाँ यह ध्यान रखें कि कमरपर पहना हुआ वस्त्र पूर्णरूपेण भीगा है कि

* नन्दिनी नलिनी सीता मालती च मलापहा। विष्णुपादाब्जसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ भागीरथी भोगवती जाह्नवी त्रिदशेश्वरी।

शरीरपर जो वस्त्र पहना हुआ है, उसीको निचोड़कर फिर उसीसे शरीरको पोंछनेका शास्त्रोंमें पूर्णतः निषेध ही

बाल्यकाल चरित्र-शिक्षाका समुपयुक्त समय है। बालकका चरित्र-निर्माण बाल्यावस्थासे ही प्रारम्भ हो जाता है। चरित्रकी नींव माता-पिताकी संस्कृति होती है और उसकी भित्ति-सामग्री सामाजिक परिवेश होता है। माता-पिताकी संस्कृति जैसी होती है, बालकका चरित्र भी वैसा ही बनता जाता है। दयाशील, सहृदय, सौहार्द-सम्पन्न व्यक्तिका बालक संकोची, विनयी एवं सुशील बनता है, पर क्रूर-कुटिल एवं कठोर-हृदयकी सन्तान दुःशील, निर्दयी और निर्मोही निकलती है। अतः यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि यदि आप चाहते हैं कि आपकी सन्तान सुसन्तान बने; सदय, सहृदय और सुसंस्कृत हो तो आप भी वैसे अवदात, अनवद्य गुणोंका आत्मावधान कीजिये। संतानोत्पत्ति सोद्देश्य होनी चाहिये। हमें भावना करनी चाहिये कि हमारी सन्तान देश-धर्मकी सेवामें तन, मन लगानेवाली और प्रभुभक्त हो। तभी हम चरित्रशील पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्नकर अपना तथा देशका कल्याण और विश्वका मंगल कर सकते हैं। चारित्र्यसे युक्त राम-जैसे पुत्र उत्पन्न करनेवाले देशमें 'रावण' उत्पन्न न हो, इसके लिये उक्त दिशाका पथिक बनना चाहिये। पर प्रश्न यह होता है कि क्या हम इस दिशामें बढ़ रहे हैं?

वैदिक वाङ्मयमें समाज, राष्ट्र एवं विश्वके प्रति नागरिकोंके कर्तव्य

(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम०ए०, पी०एच०डी०)

सर्वशक्तिमान् भगवान्ने ब्रह्माजीद्वारा बनाये गये [सृष्टिके] आदिराष्ट्र^१ भारतवर्षमें गुणकर्मका विभाग करते हुए चातुर्वर्ण्यात्मक भारतीय समाजकी सृष्टि की^२ तथा उसकी सुव्यवस्थाहेतु श्रुतियोंको प्रतिष्ठापित किया। भगवान्के श्वाससे निःसृत श्रुतियोंमें^३ निजी जीवनके नियमन एवं उत्कर्षके अतिरिक्त पारिवारिक सौमनस्यता, सामाजिक सद्भाव तथा राष्ट्रोन्नतिसे सम्बन्धित भी अनेक व्यवस्थाएँ दी गयी थीं। विशेषतः इनमें राष्ट्रकी सर्वांगीण अभ्युन्नतिहेतु

नागरिकोंके कर्तव्य ठीक उसी प्रकार सुनिश्चित किये गये थे, जिस प्रकार आधुनिक कालमें भारतीय संविधानमें नागरिकोंके मूल कर्तव्य^४ निर्धारित किये गये हैं।

श्रुतियोंने राष्ट्रकी भूसम्पदाको माताका गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया है तथा नागरिकोंको उसका पुत्र बतलाया है—

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

(अथर्व० १२।१।१२)

१. श्रीमद्भागवत और वायुपुराणके साक्ष्यपर भारतको आदिराष्ट्र कहा गया है तथा इसका प्राचीन नाम अजनाभवर्ष कहा है। इसकी व्याख्या करते हुए लिखा गया है कि ब्रह्माने भगवान्के नाभिकमलपर विराजमान होकर जिस प्रथम लोकका निर्माण किया, वही अजनाभवर्ष कहलाया। इसीलिये मनुने इसे ब्रह्मावर्त कहना संगत समझा—

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्दन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ (मनुस्मृति २।१७)

२. चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (गीता ४।१३)

३. जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। (रा०च०मा० १।२०४।५)

४. भारतीय संविधानके भाग ४ क अनुच्छेद ५१ (क) के अनुसार मूलकर्तव्य—भारतके प्रत्येक नागरिकका यह कर्तव्य होगा कि वह—
(क) संविधानका पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज तथा राष्ट्रगानका आदर करे।

(ख) स्वतन्त्रताके लिये हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनको प्रेरित करनेवाले उच्चादर्शोंको हृदयमें सँजोये रखे और उनका पालन करे।

(ग) भारतकी सम्प्रभुता, एकता और अखण्डताकी रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।

(घ) देशकी रक्षा करे और आह्वान किये जानेपर राष्ट्रकी सेवा करे।

(ङ) भारतके सभी लोगोंमें समरसता और समान भ्रातृत्वकी भावनाका निर्माण करे, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्गपर आधारित सभी भेदभावसे परे हो, ऐसी प्रथाओंका त्याग करे जो स्त्रियोंके सम्मानके विरुद्ध हों।

(च) हमारी सामाजिक संस्कृतिकी गौरवशाली परम्पराका महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे।

(छ) प्राकृतिक पर्यावरणकी; जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव हैं, रक्षा करे और उनका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्रके प्रति दयाभाव रखे।

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधारकी भावनाका विकास करे।

(झ) सार्वजनिक सम्पत्तिको सुरक्षित रखे और हिंसासे दूर रहे।

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियोंके सभी क्षेत्रोंमें उत्कर्षकी ओर बढ़नेका सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धिकी नयी ऊँचाइयोंको छू सके।

(ट) जो माता-पिता या संरक्षक हैं या जैसी भी स्थिति हो, छः और चौदह वर्षकी आयुके बीचका प्रतिपाल्य है, शिक्षाके लिये व्यवस्था करनेका अवसर दिलायें।

(संविधान ४२वाँ संशोधन १९७६ तथा ८६वाँ संशोधन १९९२ द्वारा अन्तः स्थापित) [भारतका संविधान]

(संज्ञानसूक्त ३।३०।१-२, ३-५)

देशवासियोंमें परस्पर सौहार्द हो, एतदर्थ श्रुतियाँ गुम्फित किया गया है^१—
कहती हैं कि हम सब परस्पर मित्रकी दृष्टिसे देखें। हम सब शरीरसे नीरोग हों और उत्तम वीर बनें। हममें कोई भी द्वेष करनेवाला न हो। अन्नादि हमारे लिये कल्याणकारी और स्वादिष्ट हों। हमारे लिये सब कुछ कल्याणकारी हो—

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे (यजु० ३६।१८), अरिष्टाः
स्याम तन्वा सुवीराः (अथर्व० ५।३।५), मा नो द्विक्षत
कश्चन (अथर्व० १२।१।२४), शिवं महां मधुमदस्त्वन्म्
(अथर्व० ६।७१।३), सर्वमेव शमस्तु नः (अथर्व०
१९।९।१४)।

ऋग्वेदमें राष्ट्रीय एकता और अखण्डताकी दृष्टिसे नागरिकोंको निर्देश दिये गये हैं कि वे सभी मिलकर चलें तथा मिलकर बोलें। वे शुद्ध और पवित्र चित्तवाले बनें। वे परोपकारमय जीवन जीयें। सौ हाथोंसे इकट्ठा करें तो हजार हाथोंसे बाँटें। वह मित्र ही क्या, जो अपने मित्रको सहायता नहीं देता—

संगच्छध्वं संवदध्वम् (ऋक्० १०।१९१।२), शुद्धाः
पूता भवत यज्ञियासः (ऋक्० ५।५१।१), शतहस्त समाहर
सहस्रहस्त सं किर (अथर्व० ३।२४।५), न स सखा यो न
ददाति सख्ये (ऋक्० १०।११७।४)।

यजुर्वेद (२२।२२)—में सर्वशक्तिमान् ईश्वरसे कामना की गयी है कि वे हमारे प्रिय भारतवर्षको सभी संसाधनोंसे परिपूर्ण और समुन्नत बनायें—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्यः
शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्धी
धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो
युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो
वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्॥
इस मन्त्रके भावोंको एक गीतके रूपमें इस प्रकार

भारतवर्ष हमारा प्यारा, अखिल विश्वसे न्यारा,
सब साधनसे रहे समुन्नत, भगवन्! देश हमारा।
हों ब्राह्मण विद्वान् राष्ट्रमें ब्रह्मतेज-व्रत-धारी,
महारथी हों शूर धनुर्धर क्षत्रिय लक्ष्य-प्रहारी।
गौएँ भी अति मधुर दुग्धकी रहें बहाती धारा।
सब साधनसे रहे.....

भारतमें बलवान् वृषभ हों, बोझ उठायें भारी,
अश्व आशुगामी हों दुर्गम पथमें विचरणकारी।
जिनकी गति अवलोक लजाकर हो समीर भी हारा।
सब साधनसे रहे.....

महिलाएँ हों सती सुन्दरी सद्गुणवती सयानी,
रथारूढ भारत-वीरोंकी करें विजय-अगवानी।
जिनकी गुण-गाथासे गुंजित दिग्-दिगन्त हो सारा।
सब साधनसे रहे.....

यज्ञ-निरत भारतके सुत हों, शूर सुकृत-अवतारी,
युवक यहाँके सभ्य सुशिक्षित सौम्य सरल सुविचारी।
जो होंगे इस धन्य राष्ट्रका भावी सुदृढ़ सहारा।
सब साधनसे रहे.....

समय-समयपर आवश्यकतावश रस घन बरसाये,
अन्नौषधमें लगेँ प्रचुर फल और स्वयं पक जायें।
योग हमारा, क्षेम हमारा स्वतः सिद्ध हो सारा।
सब साधनसे रहे.....

भारतीय संस्कृतिमें सम्पूर्ण वसुधाको कुटुम्बवत् माना गया है।^२ हमारा यह भाव रहता है कि सभी सुखी हों, सभी नीरोग हों, सभीका कल्याण हो, किसीको भी कभी दुःख न हो।^३ अपनी इन्हीं उदात्त भावनाओंके बलपर भारतको विश्वगुरुका गौरव प्राप्त था और भारतवर्षके सदाचार समस्त विश्वके लिये आचरणीय (अनुकरणीय) कहे जाते थे।^४

१. यह पद्यानुवाद आजसे लगभग ६-७ दशकपूर्व स्व० पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' द्वारा किया गया था।

२. वसुधैव कुटुम्बकम्।

३. सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

४. एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

(२) बाहर-भीतरसे चुप। जहाँ आप हैं, वहाँ पूरे-
 arma। MADE WITH LOVE BY Avinash/Shr
 क-पर हैं। कदम भी डक़ा मत करे। बाहर-भीतर चुप हैं।

(११) दैवी सम्पत्ति अपनायें—(१) मेरे ही दृढ़ भरोसे अभय रहना। (२) अन्तःकरणमें मेरेको प्राप्त करनेका एक दृढ़ निश्चय। (३) मुझे तत्त्वसे जाननेके लिये हरेक परिस्थितिमें सम रहना। (४) सात्त्विक दान देना। (५) इन्द्रियोंको वशमें रखना। (६) अपने कर्तव्यका पालन करना। (७) शास्त्रोंके सिद्धान्तोंको जीवनमें उतारना। (८) कर्तव्य-पालनके लिये कष्ट सहन करना। (९) शरीर, मन तथा वाणीकी सरलता। (१०) तन-मन और वाणीसे किसी भी प्राणीको कभी किंचिन्मात्र भी कष्ट न पहुँचाना। (११) जैसा देखा, सुना और समझा वैसा-का-वैसा प्रिय शब्दोंमें कह देना। (१२) मेरा स्वरूप समझकर किसीपर भी क्रोध न करना। (१३) संसारकी कामनाका त्याग। (१४) अन्तःकरणमें रागद्वेषजनित हलचलका न होना। (१५) चुगली न करना। (१६) प्राणियोंपर दया करना। (१७) सांसारिक विषयोंमें न ललचाना। (१८) अन्तःकरणकी कोमलता। (१९) अकर्तव्य करनेमें लज्जा। (२०) चपलताका अभाव (उतावलापन न होना)। (२१) शरीर और वाणीमें तेज (प्रभाव) होना। (२२) अपनेमें दण्ड देनेकी सामर्थ्य होनेपर भी अपराधीके अपराधको क्षमा करना। (२३) हरेक परिस्थितिमें धैर्य रखना। (२४)

(२०) सभी मनुष्य सब प्रकारसे भगवान्‌के ही मार्गका अनुसरण करते हैं, अतः भगवान्‌द्वारा बताये गये उपदेशोंको ग्रहण करना चाहिये।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

(२१) ममता और अहंकारका त्याग करें।

कहते हैं कि—

(२२) अच्छी तरह आचरणमें लाये हुए दूसरेके धर्मसे गुणोंकी कमीवाला अपना धर्म श्रेष्ठ है। अपने धर्ममें तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरेका धर्म भय देनेवाला है।

१. तू मेरा भक्त हो जा।

२. मुझमें मनवाला हो जा।

३. मेरा पूजन करनेवाला हो जा।

४. मुझे नमस्कार कर।

(२३) अपने द्वारा अपना उद्धार करें, अपना पतन न करें; क्योंकि व्यक्ति स्वयं अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है।

५. अपने आपको (मेरे साथ) लगाकर मेरा परायण

हुआ (तू) मुझे ही प्राप्त होगा।

(२४) अनन्य भक्तिके लिये साधकको क्या करना है ?

(२६) सच्ची और पक्की बात—यदि आपको दुःख,

१. सब कर्मोंको मेरे लिये करना। २. मेरे ही परायण होना। ३. मेरे ही प्रेमी-भक्त होना। ४. सर्वथा आसक्तिरहित होना। ५. प्राणिमात्रके साथ वैरभावसे रहित होना।

अशान्ति, आफत चाहिये तो शरीर-संसारसे सम्बन्ध जोड़ लो, उनको अपना मान लो और यदि सुख, शान्ति, आनन्द, मस्ती चाहिये तो परमात्मासे सम्बन्ध जोड़ लो, उनको अपना मान लो। चुनाव आपके हाथमें है।

[ब्रह्मलीन स्वामी श्रीरामसुखदासजीके प्रवचनोंके आधार पर]

(२५) भगवान् अपने भजनकी विधि बताते हुए

[प्रेषक—श्रीधनसिंहराव]



विदेशोंमें बसे भारतीयोंकी जीवनचर्या

(श्रीलल्लनप्रसादजी 'व्यास')

उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दीमें विश्वमें एक अद्भुत घटनाक्रम घटित हुआ, जो मानव इतिहासमें स्वर्ण-अक्षरोंमें अंकित करनेयोग्य है। वह यह है कि जब भारतके निर्धन नर-नारी रोजी-रोटीकी तलाशमें जहाजोंमें भरकर भारतसे बाहर सुदूर अनजान द्वीपोंमें ले जाये गये तब उनके जीवन और जीवनचर्याके आधार प्रायः श्रीरामचरितमानस और हनुमान-चालीसाके रूपमें श्रीराम और श्रीहनुमान्जी बन गये। जहाजोंके भारतभूमि छोड़ते ही उनके स्वर्णिम सपने नारकीय जीवनमें बदल जाते थे और महीनोंकी उबाऊ और अस्वस्थकारी समुद्र-यात्राके बाद तो उनको नरक साफ-साफ दिखायी पड़ने लगता था। नरक इसलिये नहीं कि ये द्वीप कोई भयानक थे, बल्कि इसलिये कि गन्नेके खेतोंमें मालिकाके जिन दलाल या कर्मचारियोंके अधीन उन्हें

काम करना पड़ता था, वे प्रायः निर्दयी और अन्यायी होते थे और इन भोले-भाले भारतीयोंके साथ पशुवत् व्यवहार करते थे। गाली-गलौज तो आम बात थी। कभी-कभी इनपर कोड़ोंकी मार भी कर देते थे।

ऐसी यातना और अन्यायके दौरमें भी मॉरिशस, फिजी, ट्रिनिडाड, सूरीनाम, गयाना आदि देशोंमें पहुँचे इन लाखों प्रवासी भारतीयोंका जीवन और जीवनचर्याकी डोर भारतीय संस्कृति और धर्मसे जुड़ी रही। वे सूर्योदयके समय उठते, नहाते और शिवलिंगनुमा किसी पत्थरमें शंकरभगवान्की भावना करके उसपर जल चढ़ाते, हनुमान-चालीसाका पाठ करते, श्रीरामचरितमानसके कुछ दोहे-चौपाई दोहराते और फिर दिनभर चिलचिलाती धूप या बरसातमें पशुओंकी तरह काम करते। फिर अपनी टाँका बना झापाड़यामें लाटकर

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

स्नान-भोजनके बाद अपने साथी-समूहोंमें बैठकर ढोलक, झाँझ, मंजीरा बजाते हुए श्रीरामचरितमानस और हनुमान-चालीसाका सस्वर सामूहिक पाठ करते और दिनभरकी थकान, बेबसी और बेइज्जतीको भुला देते।

लगभग एक-डेढ़ शताब्दीमें ही मानस और चालीसाका ऐसा आध्यात्मिक चमत्कार हुआ कि कुली-मजदूर बनकर इन देशोंमें जानेवाले बेबस भारतीय वहाँके प्रधानमन्त्री, गवर्नर जनरल, राष्ट्रपति, प्रधान न्यायाधीश आदि बनकर भाग्य विधाता बन गये। ऐसा इन सभी पाँचों देशोंमें किसी-न-किसी समय सम्भव हुआ और आज भी वह महत्त्व किन्हीं देशोंमें शेष है। जमैका, दक्षिण अफ्रीका, मलाया, श्रीलंका (पहले सीलोन) आदिमें भारतीयोंकी मिलती-जुलती कहानी है। फिर बीसवीं शताब्दीमें तो रोजगार और व्यापारके सिलसिलेमें लाखों बल्कि करोड़ों भारतीय विश्वके सभी महाद्वीपोंमें फैल गये, जिन्होंने किसी-न-किसी रूपमें भारतीय संस्कृति और उससे जुड़ी जीवनचर्यासे जुड़ाव बनाये रखा।

बीसवीं शताब्दीमें विज्ञान और तकनीकीका प्रभाव और प्रसार बढ़नेके साथ भारतीयोंमें भी कहीं-कहीं मानव-मूल्योंका क्षरण होने लगा तो कुछ आध्यात्मिक विभूतियोंद्वारा विश्वभरमें श्रीकृष्णभक्ति-भावनाका जो व्यापक प्रचार हुआ, उसने भारतीयोंसे अधिक करोड़ों गैर भारतीयों यानी विदेशियोंकी जीवनचर्याको बदलकर प्रभुभक्ति और प्रभु-समर्पणसे जोड़ दिया। उनके साथ ही रामायण और श्रीमद्भागवतके बड़े-बड़े प्रवचन आयोजित होने लगे, जिन्होंने भारतवंशी विदेशियोंकी जीवनचर्याको बदलकर भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओंसे जोड़ा।

विदेशोंमें अनेक मन्दिर हैं, जहाँ प्रातःसे सायंकालतक पूजन, भजन, आरती, प्रसादवितरण आदि होता रहता है और उसके साथ नृत्य-कीर्तन भी। इसके अलावा अनेक देशोंमें स्थापित गुरुद्वारोंमें रोजाना श्रीगुरुग्रन्थसाहिबका पाठ, भजन-कीर्तन, लंगर आदि चलते रहते हैं।

अब चर्चा उन लोगोंकी है, जो भारतीय या भारतवंशी न होते हुए भी अपने-अपने देशोंमें भारतीय संस्कृति और उसकी परम्पराओंसे प्रभावित जीवनचर्याका पालन करते हैं। इनमें पड़ोसी देश थाईलैण्ड, बरमा, कम्बोडिया, लाओस आदि हैं, जहाँ बौद्धधर्मका पालन होता है। इन देशोंमें सूर्योदयसे पूर्व (उषाकाल) हजारोंकी संख्यामें पीतवस्त्रधारी

बौद्ध भिक्षु एक हाथमें भिक्षापात्र और दूसरेमें कमलका फूल लिये गलियों-सड़कोंपर घरोंके आगे घूमते दिखायी पड़ते हैं और गृहस्थ स्त्रियाँ उन्हें बुलाकर भोजन सामग्री, पेय पदार्थ आदि देनेके लिये तत्पर रहती हैं। उन भिक्षुओंके आनेसे पूर्व ही जागकर वे स्त्रियाँ भोजन बनाती हैं। सामान्य रूपसे कोई भिक्षु आवाज नहीं लगाता और कई एक साथ किसीके घरके बाहर भिक्षाके लिये नहीं पहुँचते। इसके बाद वे अपने मठोंमें जाकर भिक्षा ग्रहण करते हैं तथा उन मठोंमें आनेवाले छात्रों और जिज्ञासुओंको धार्मिक शिक्षा भी प्रदान करते हैं। ये बौद्ध भिक्षु सूर्यास्तके बाद भोजन नहीं करते। पेय पदार्थ अवश्य ले सकते हैं। इसी प्रकार इंडोनेशियाके हिन्दूबहुल सुन्दर द्वीप बालीमें हिन्दू परम्पराओंसे प्रभावित जीवनचर्या देखनेको मिलती है।

भारतसे बाहर भारतीय संस्कृतिकी कुछ श्रेष्ठ परम्पराओंके दर्शन अभी भी होते हैं, जो उनकी जीवनचर्याके अंग बन गये हैं। इसके विपरीत विदेशी शिक्षा और विदेशी संस्कृतिसे प्रभावित भारतके लोग परम्परागत श्रेष्ठ जीवनचर्यासे दूर होते दिखायी पड़ रहे हैं। हाँ, कहीं-कहीं यह भी देखनेमें आता है कि ऐसे लोगोंमें भी कुछ सन्तोंकी कृपा और सत्संगके प्रभावसे पुनः उनकी आस्था वापस आयी है। दक्षिण भारतके प्रदेशोंके नगरों और ग्रामोंमें अपेक्षाकृत अपनी सांस्कृतिक परम्पराओंसे अधिक लगाव दिखायी पड़ता है। वहाँके कामकाजी तथा अन्य लोग भी सुबह जल्दी उठकर स्नान करते, पूजन करते और मस्तकपर भस्म लगाते दिखायी पड़ते हैं।

देश-विदेशमें प्रायः यह देखा गया है कि जिन लोगोंमें अपने धर्म, संस्कृति और परम्पराओंको पालन करनेकी दृढ़ता और निष्ठा है तथा उनसे प्रभावित जीवनचर्याके प्रति भावात्मक लगाव है, वे जीवनमें अपेक्षाकृत अधिक सफल और सुखी हैं तथा उनमें शान्ति और सन्तोष भी है। श्रद्धा, भक्ति, आस्था और निष्ठा होनेपर उचित और अपेक्षित जीवनचर्या स्वतः बन जाती है। पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षाके कुप्रभावरूपी आँधी-तूफान और भौतिकवादकी अन्धी दौड़के वर्तमान दौरमें हमें अपनी संस्कृति और संस्कारोंकी जड़ोंसे और अधिक मजबूतीसे जुड़े रहनेकी आवश्यकता है।

इसके लिये आवश्यक है कि हम भारतीय संस्कृतिपर आधारित जीवनचर्याका पालन करें।



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



KAPWING

सफल जीवन

यस्य जीवन्ति धर्मेण पुत्रा मित्राणि बान्धवाः । सफलं जीवितं तस्य नात्मार्यं को हि जीवति ॥
 वाणी रसवती यस्य भार्या पुत्रवती सती । लक्ष्मीर्दानवती यस्य सफलं तस्य जीवितम् ॥
 स जीवति यशो यस्य कीर्तिर्यस्य स जीवति । अयशोऽकीर्तिसंयुक्तो जीवन्नपि मृतोपमः ॥
 धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् । सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति ॥
 आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः । स चेन्निरर्थकं नीतः का नु हानिस्ततोऽधिका ॥
 शरीरस्य गुणानाञ्च दूरमत्यन्तमन्तरम् । शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ॥
 स जीवति गुणा यस्य धर्मो यस्य च जीवति । गुणधर्मविहीनस्य जीवनं निष्प्रयोजनम् ॥
 स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् । परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ॥
 दुःखितानां हि भूतानां दुःखोद्धर्ता हि यो नरः । स एव सुकृती लोके ज्ञेयो नारायणांशजः ॥
 कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन । अपारसंवित्पुखसागरेऽस्मिँल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥
 सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमा गाङ्गां वारि समस्तवारिनिवहाः पुण्याः समस्ताः क्रियाः ।
 वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी सर्वावस्थितिरेव वस्तुविषया दृष्टे परब्रह्मणि ॥

जिसके धर्माचरणसे पुत्र, मित्र और बन्धु-बान्धव जीवित रहते हैं, उसीका जीवन सफल है; अपने लिये कौन नहीं जीता है! जिसकी वाणी रसमय (मधुर) है, पत्नी पुत्रवती तथा पतिव्रता है और लक्ष्मी (सम्पदा) दानवती है, उसीका जीवन सफल है। जिसका यश है, वही जीता है और जिसकी कीर्ति है, वही जीता है। यश तथा कीर्तिसे रहित व्यक्ति जीवित रहता हुआ भी मृतकके समान है। बुद्धिमान्को उचित है कि दूसरेके उपकारके लिये धन और जीवनतकको अर्पण कर दे; क्योंकि इन दोनोंका नाश तो निश्चय ही है, इसलिये सत्कार्यमें इनका त्याग करना अच्छा है। जीवनका एक क्षण भी कोटि स्वर्णमुद्रा देनेपर नहीं मिल सकता, वह यदि वृथा नष्ट हो जाय तो इससे अधिक हानि क्या होगी? शरीर और गुण इन दोनोंमें बहुत अन्तर है, क्योंकि शरीर तो थोड़े ही दिनोंतक रहता है और गुण प्रलयकालतक बने रहते हैं। जिसके गुण और धर्म जीवित हैं, वह वास्तवमें जी रहा है, गुण और धर्मरहित व्यक्तिका जीवन निरर्थक है। वास्तवमें उसीका जन्म लेना सफल है, जिसके उत्पन्न होनेसे वंश उन्नतिको प्राप्त होता है, इस परिवर्तनशील संसारमें कौन नहीं मृत्युको प्राप्त हुआ है और कौन उत्पन्न नहीं होता! जो मनुष्य दुःखित प्राणियोंके दुःखका उद्धार करता है, वही इस लोकमें पुण्यात्मा है, उसको नारायणके अंशसे उत्पन्न हुआ समझना चाहिये। जिसका चित्त इस अपार चिदानन्दसिन्धु परब्रह्ममें लीन हो गया, उससे उसका कुल पवित्र हो गया, माता कृतार्थ हो गयी और पृथ्वी पुण्यवती हो गयी। जिसने परब्रह्मका साक्षात्कार कर लिया है, उसके लिये सारा जगत् नन्दनवन है, सब वृक्ष कल्पवृक्ष हैं, सब जल गंगाजल हैं, उसकी सारी क्रियाएँ पवित्र हैं, उसकी वाणी चाहे प्राकृत हो या संस्कृत—वह वेदका सार है, उसके लिये सारी पृथ्वी काशी है और उसकी सभी चेष्टाएँ परमात्ममयी हैं।